शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बालचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

नवम्बर : १९६२ ☆ वर्ष अठारहवाँ, कार्तिक, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : ७

आनन्द की उषा

★

अरे जीव! पर के और विभाव के कर्तृत्व में पराधीन होकर अज्ञानरूपी अंधकार में तूने अनंत काल व्यतीत किया;..... एक दिन, अरे! एक क्षण भी पराधीनता रहित है या नहीं? एक क्षण तो पर के साथ का सम्बन्ध तोड़कर तथा स्वभाव के साथ सम्बन्ध जोड़कर सवाधीन हो! चैतन्य स्वभावोन्मुख होने पर तेरे जीवन में स्वाधीनता के सुशोभित अतीन्द्रिय आनन्द की उषा प्रगट होगी।

[नूतन-वर्ष के प्रवचन से]

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२१०]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

समस्वभावी चैतन्य में झूलनेवाले संतों का

मंगलमय प्रसाद

शुद्ध प्रकाश की अतिशयता के कारण जो सुप्रभात के समान है, आनन्द में सुस्थित ऐसा जिसका सदा अस्खलित एक रूप है और जिसकी ज्योति अचल है, ऐसा यह आत्मा हमें उदय को प्राप्त हो !

जो भेदविज्ञान की शक्ति के द्वारा अपनी (स्वरूप की) महिमा में लीन रहते हैं, उन्हें नियम से शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति होती है; ऐसा होने पर, अचलितरूप से समस्त अन्य द्रव्यों से दूर वर्तते हुए ऐसे उनके, अक्षय कर्ममोक्ष होता है; चित्स्वभाव के पुंज द्वारा ही अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य किये जाते हैं, ऐसा जिसका परमार्थ स्वरूप है और जो एक है, ऐसा असीमित ज्ञानानन्दमय समयसार को मैं समस्त बंध पद्धति को (पराश्रय-व्यवहार को) दूर करके अनुभव करता हूँ; मोक्षेच्छुओं को केवल एक ज्ञान के आलम्बन से नियत ही ऐसा यह एक पद प्राप्त करने योग्य है। हे भव्य ! ज्ञानमात्र आत्मा में आत्मा का निश्चय करके,

इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे ॥२०६॥

ऐसी सत्यशरण बतलाकर मंगल आशिष दातार धर्म धुरंधर संतों को तथा परम उपकारी सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव को अत्यंत भक्ति भाव से नमस्कार करते हैं।

सर्व साधक संतों की जय हो। (संपादक)

आत्मधर्म

: संपादक : जगजीवन बाउचन्द दोशी

नवम्बर : १९६२ ☆ वर्ष अठारहवाँ, कार्तिक, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : ७

परम उपकारी, अध्यात्मयोगी, सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी

दीपावली

महावीर निर्वाण कल्याणक मंगल अवसर को याद करके अंतरंग में ऐसा महान उज्ज्वल ज्ञान दीपक प्रगट कीजिए कि जिससे अज्ञानरूपी अंधकार का संपूर्णतया नाश हो जाये।

स्वरूप लक्ष्मी की ऐसी पूजा कीजिए कि फिर कभी जड़ लक्ष्मी की आवश्यकता ही न रहे। शारदा, सरस्वती, भगवान की दिव्यध्वनि अर्थात् भावश्रुतज्ञान–केवलज्ञान की ऐसी पूजा कीजिये कि फिर लौकिक शारदा पूजन की झंझट ही न रहे।

भगवान महावीर कथित अहिंसा सत्य–अचौर्य–ब्रह्मचर्य–अपरिग्रहरूपी ऐसा अमूल्य आभषण धारण कीजिये कि लौकिक आभूषण धारण करना ही न पड़े।

आत्मसुख देनेवाले मंगलमयी स्वकाल (स्व अवस्था) प्रगट कीजिये कि फिर कभी भी अमंगल होने न पावे।

ऐसा आत्मस्वभावरूप पावन धूप प्रगट कीजिये कि जिसकी सुगंध चारों ओर फैल जाये और जिसमें द्रव्यकर्म, भावकर्म जलकर भस्म हो जाये कि जिससे फिर वे कभी उत्पन्न ही न होवें।

आत्मा के अत्यन्त मिष्ट, स्वादिष्ट और अपूर्व ऐसा ज्ञानामृतरूपी भोजन कीजिए कि जिससे फिर पौद्गलिक मिष्टान्न की आवश्यकता ही न रहे।

निर्वाण लाडू ऐसे चढ़ाइये कि जिससे स्वरूप–श्रेणी में आगे बढ़ते ही रहें और मोक्षपद को प्राप्त करें।

महावीर निर्वाण कल्याणक मंगल दिन को याद करके ऐसा आत्मिक वीर्य अंतरंग में उछलना चाहिये कि जिससे महावीर तुल्य दशा की प्राप्ति हो जाये।

मोह, राग–द्वेष के फटाके ऐसे फटाफट फोड़ डालो कि जिससे संसार के परिभ्रमण करके फटफट (तिरस्कार) होने का प्रसंग ही न आवे।

आत्मा के निज असंख्य प्रदेशों में अनंत ज्ञानरूपी दीपकों का प्रगट होना, वही सच्ची दीपावली है और इसलिये सतत् प्रयत्नशील रहनेवाले जीव ने ही सच्ची दीपावली मनाई है।

ऐसा अपूर्व दीपावली उत्सव मनानेवाले ही वास्तव में नित्य अभिवंदन तथा अभिनंदन के पात्र हैं।

नूतन वर्षाभिनंदन

सभी जीवों को आत्मिक सुख समृद्धि होवो, और धर्म–वात्सल्य में अपार वृद्धि हो!

गुरुदेव की ओर से—
नूतनवर्ष का उपहार

यह नूतनवर्ष (वीर निर्वाण संवत २४८८, कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा) का प्रवचन है...... इसमें पूज्य गुरुदेव ने सम्यग्दर्शन की रीति बतलायी है। इसे झेलकर आत्मा में सम्यक्त्वरूपी मंगल सुप्रभात का उदय करना, हम सबका कर्तव्य है।

इस १४२ वीं गाथा में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की रीति का अलौकिक वर्णन है। जो बद्धपने का विकल्प है, वह तो सम्यग्दर्शन का कारण नहीं है, तथा आत्मा अबद्ध है—ऐसा विकल्प भी समयग्दर्शन का कारण नहीं है। बद्ध हूँ—ऐसे नयपक्ष को तो छोड़ दिया, किंतु मैं अबद्ध हूँ—ऐसे विकल्प को नहीं छोड़ा और उसके कर्तृत्व में अटक गया तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। जिसप्रकार अन्य जीव बाह्य प्रवृत्तियों की खटपट में लगे रहते हैं, उसीप्रकार यह भी अंतर में विकल्पों के चक्कर में पड़ा रहता है; किंतु विकल्पों से पृथक् होकर ज्ञानमय परिणमन नहीं करता। ज्ञान को समस्त विकल्पों से हटाकर अंतर्मुख करे, तभी शुद्धता का अनुभव होता है।

सम्यग्दर्शन के पश्चात् जो विकल्प उठे, वह तो ज्ञान से भिन्नरूप ही वर्तता है, ज्ञान उसके कर्तृत्व में नहीं अटकता। यह वस्तु महँगी और दुर्लभ है, किंतु अशक्य नहीं है; अंतर के सच्चे प्रयत्न से प्राप्त हो सकती है। मिथ्यादृष्टि, राग के कर्तृत्व में अटक जाता है; अंतर में सूक्ष्म विकल्प आये कि 'मैं शुद्ध हूँ', वहाँ वह विकल्प में संतुष्ट होकर उसके कर्तृत्व में अटक जाता है; अनेक स्थूल विकल्प छूट जाने से वह मानता है कि 'मैं बाह्य से पराङ्मुख हो गया हूँ'; किंतु अंतर के सूक्ष्म विकल्प को कर्तव्य मानकर अटका, वह बहिर्मुख वृत्ति में ही अटका है। स्थूलरूप से ऐसा विचार करे कि—'मैं राग से पृथक् हूँ; राग निश्चय से मेरा कार्य नहीं है;' किंतु अंतरवेदन में ज्ञान को राग से पृथक् नहीं करता, इसलिये परिणमन में तो उसे ज्ञान और राग की एकत्वबुद्धि ही वर्तती है। 'मैं शुद्ध हूँ'—ऐसा जो शुद्धात्मा का विकल्प है, वह कहीं सम्यग्दर्शन नहीं है; 'मैं शुद्ध हूँ'—ऐसी दृष्टि का अंतरपरिणमन होना अर्थात् शुद्ध आत्मा के साथ पर्याय का तद्रूप होना, सो सम्यग्दर्शन है। ऐसे सम्यग्दर्शन में किसी भी विकल्प का अवलम्बन नहीं है; अज्ञानी तो विकल्पों को बदलता रहता है। बंध का विकल्प छोड़कर अबंधपने का विकल्प किया, वहाँ मानों मैं अबंध हो गया; किंतु वास्तव

में अबंध का विकल्प भी बंधभाव ही है और वह बंधभाव में ही अटका हुआ है। बंधभाव को लांघकर साक्षात् अबंध भावरूप परिणमन हो, उसका नाम शुद्धता है।

अहो, यह गाथा अंतर के परिणमन का स्वरूप बतलानेवाली है! अनुभवदशा की प्राप्ति कैसे होती है, उसकी यह रीति बतलायी जा रही है। **यह नूतन वर्ष का उपहार दिया जा रहा है... कैसा उपहार? बाह्य वस्तु नहीं, अंतर के विकल्प का भी नहीं किंतु बाह्य वस्तु के अवलम्बन से रहित एवं विकल्पातीत ऐसी चैतन्य वस्तु के अनुभवरूप सम्यग्दर्शन कैसे होता है?**—उसका उपहार संत दे रहे हैं। यह चैतन्य वस्तु एक छोटे से छोटे विकल्प के कर्तृत्व का बोझ भी सहन नहीं कर सकती। ज्ञातास्वभावी भगवान आत्मा में विकल्प के कर्तृत्व का समावेश नहीं हो सकता। जिसप्रकार आँख में एक बारीक कण भी नहीं समाता, उसीप्रकार चैतन्यस्वभाव में विकार के कर्तृत्व का एक कण भी नहीं समा समता; फिर चाहे वह विकल्प बंध का हो या अबंध का हो; अथवा मैं बद्ध भी हूँ और अबद्ध भी हूँ—ऐसा विकल्प हो... उस विकल्प के कर्तृत्व में जो अटके, वह मिथ्यादृष्टि ही रहता है; वह विकल्प के ही पक्ष में स्थित है किंतु ज्ञान के पक्ष में नहीं आया है। ज्ञान को समस्त विकल्पों से पृथक् करके अंतर्मुख उपयोग द्वारा निर्विकल्प चैतन्य का वेदन हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

जहाँ ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ आत्मा में सोने का सूर्य उदित हुआ है... मंगल प्रभात हुआ है!

निश्चय से तो वस्तु अबद्ध ही है; यह यथार्थ है—असत्य नहीं है; किंतु 'मैं अबद्ध हूँ'—ऐसा जो विकल्प है, वह कहीं वस्तुस्वरूप नहीं है, वह विकल्प वस्तुस्वरूप से बाहर है; इसलिये जो उस विकल्प के कर्तृत्व में रुकता है, वह वस्तुस्वरूप से बाहर ही रहता है। वस्तुस्वरूप का अनुभव विकल्प द्वारा नहीं हो सकता। यहाँ जो बद्ध-अबद्ध की बात कही, उसीप्रकार शुद्ध-अशुद्ध, एक—अनेक आदि किसी भी प्रकार का विकल्प हो किंतु वह ज्ञान का कार्य नहीं है; जो उसे ज्ञान का कार्य मानता है, वह जीव उससे आगे बढ़कर उपयोग को चैतन्यस्वभाव की ओर उन्मुख नहीं करता। जो जीव समस्त प्रकार के नयपक्ष के विकल्पों को लाँघ जाता है, तथा शुद्धात्मा का साक्षात् आश्रय करता है, वही चैतन्य का अनुभव करता है। देखो, यह चैतन्य के अनुभव की आकांक्षा पूर्ण करने की रीति! अनुभव की आकांक्षा (उत्कंठा) तो बहुतों को होती है किंतु उसकी रीति जाने बिना वह आकांक्षा पूरी कैसे हो? भाई, तेरी अनुभव की आकांक्षा कैसे पूरी हो—उसकी यह रीति संत बतला रहे हैं।

यहाँ निश्चयनय का आश्रय छोड़ने की बात नहीं है किंतु उस निश्चय के विकल्प का आश्रय छोड़ने की बात है। जिसप्रकार व्यवहारनय का विकल्प छोड़ने योग्य है, उसीप्रकार निश्चय का विकल्प भी छोड़ने योग्य है—यह बात ठीक है; किंतु कोई ऐसा कहे कि जिसप्रकार व्यवहारनय का आश्रय छोड़ने योग्य है, उसीप्रकार निश्चयनय का आश्रय भी छोड़ने योग्य है तो यह बात ठीक नहीं है। व्यवहारनय का आश्रय तो छोड़ने योग्य है, किंतु निश्चयनय का आश्रय छोड़ने योग्य नहीं है। निश्चय के आश्रय में कोई विकल्प नहीं है; विकल्प से पार अंतर्मुख हो, तभी निश्चय का आश्रय प्रगट होता है। शुद्ध आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय है, किंतु 'मैं शुद्ध हूँ'—ऐसे विकल्प का वह विषय नहीं है। दोनों की परिणति ही भिन्न-भिन्न है। विकल्प, वह विभावपरिणति और सम्यग्दर्शन, वह स्वभावपरिणति, उनका एक-दूसरे से कोई संबंध नहीं है। परिणति जब चैतन्योन्मुख परिणमन करती है, तब उसमें विकल्प का कर्तृत्व नहीं रहता। ज्ञेयरूप में विकल्प भले ही हो, किंतु ज्ञान के कार्यरूप में विकल्प नहीं होता। विकल्प को ज्ञान का कार्य माने तो उस विकल्प से पार होकर चैतन्य की ओर कैसे जायेगा? अहा! कितनी वीतरागता!! सम्यग्दर्शन में भी ऐसी वीतरागता है कि राग के अंशमात्र को वह स्वकार्य रूप से स्वीकार नहीं करता। ज्ञान को अंतर्मुख करने से ही निर्विकल्प अनुभूति होती है।

अहो, जब ऐसी वस्तुस्थिति है, तब विकल्प के कर्तृत्व में कौन रुकेगा? नयपक्ष के समस्त विकल्पों के त्याग की भावना को कौन नहीं नचायेगा? विकल्प से भिन्न चेतना को कौन नहीं परिणमित करेगा?—जो नयों के पक्षपात को छोड़कर अर्थात् विकल्प से भिन्न होकर निर्विकल्प अनुभूति से चैतन्य का अनुभव करते हैं, वे निर्विकल्प आनन्द रस के परम अमृत का साक्षात् पान करते हैं।

प्रथम तो निर्विकल्प अनुभूति से साक्षात् अमृत का अनुभव करते हैं और फिर विकल्प उठे, तब भी उस विकल्प को ज्ञान से पृथक्‌रूप ही रखते हैं, इसलिये स्वयं तो अपने चेतनस्वरूप में ही गुप्त रहते हैं, विकल्प आये उसमें ज्ञान युक्त नहीं होता; किंतु जो स्वसन्मुखता के बल से भेदज्ञान परिणमित हो गया है, वह विकल्प के समय भी सतत बना रहता है। विकल्प में तो चित्त का क्षोभ है और शुभविकल्प में भी चित्त का क्षोभ है-क्लेश है; उससे ज्ञान को भिन्न जानकर जब सर्व विकल्पों को लाँघ जाता है, तब विकल्पों का पक्षपात मिट जाता है और निर्विकल्प श्रद्धा होती है; इसलिये स्वरूप में प्रवृत्ति होती है तथा अतीन्द्रिय सुख का अनुभव होता है।—ऐसी दशा का नाम सम्यग्दर्शन है और वह अपूर्व मंगल प्रभात है।

परम शांतिदायिनी
अध्यात्म-भावना

भगवान श्री पूज्यपाद स्वामी रचित 'समाधिशतक' पर
परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के
अध्यात्म भरपूर वैराग्य प्रेरक
प्रवचनों का सार

(गतांक नंबर २०९ से आगे)

[वीर संवत् २४८२, श्रावण कृष्णा प्रतिपदा, वीर शासन-जयंती, दिव्यध्वनि-मंगल दिवस; समाधिशतक गाथा-६०]

आज भगवान महावीरस्वामी की दिव्यध्वनि का दिवस है। केवलज्ञान तो उन्हें ६६ दिन पहले हो चुका था, किंतु अभी उपदेश प्रगट नहीं हुआ था (दिव्यध्वनि नहीं खिरी थी); इसलिये आज राजगृही में विपुलाचल पर्वत पर समवसरण में गौतमस्वामी के आने से प्रथम उपदेश (दिव्यध्वनि) प्रगट हुआ और उसे झेलकर गौतमस्वामी ने गणधर पद से शास्त्रों की रचना की.... उन शास्त्रों की परम्परा आज भी विद्यमान है। शासन का नूतनवर्ष भी आज है और जगत के नियमानुसार भी आज ही नूतनवर्ष है।

भगवान महावीर का पूर्ण विकास इस भव में हुआ; कि उससे पूर्व उस आत्मा में धर्म का प्रारम्भ (सम्यग्दर्शन प्राप्ति) तो दस भव पूर्व सिंह के भव में हो चुका था; तत्पश्चात् क्रमश: आगे बढ़ने पर अब से तीन भव पूर्व नंदराजा के भव में तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया... और यह उनका अंतिम भव था। उसमें भगवान ने बाल ब्रह्मचारी रहकर दीक्षा ग्रहण की और फिर आत्मध्यान में लीन रहकर वैशाख शुक्ला दशम को केवलज्ञान प्रगट हुआ.... परिपूर्ण आनन्द प्रगट हुआ। पूर्वकाल में उस आनन्द का भान तो था, और ''अहो! इस आनन्द में लीन होकर परिपूर्ण आनन्द प्रगट करूँ... अपने आनन्द में लीन होऊँ.... तथा ऐसा आनन्द जगत के जीव भी प्राप्त करें''—ऐसी भावना पूर्वकाल में भायी थी, वह अब केवलज्ञान होने पर पूर्ण हुई.... भगवान के आत्मा की शक्ति में से अचिंत्य ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण विकसित हो गये....।

देखो, भगवान का भंडार खुला और केवलज्ञान के अनंत निधान प्रगट हुए... भगवान ने चैतन्य भंडार के ताले खोल दिये और दिव्यध्वनि द्वारा जगत् को उसका निधान बतलाया।

बैशाख शुक्ला दशम को भगवान ने केवलज्ञान प्रगट किया... इन्द्रों ने आकर महोत्सव मनाया और समवसरण की रचना की। जिसमें देवों, मनुष्यों और तिर्यंचों की सभा लगी... किंतु छियासठ दिन तक भगवान की वाणी नहीं निकली। तीर्थंकर भगवान की वाणी का ऐसा नियम है कि जब उनकी वाणी खिरे तब उसे झेलकर धर्म प्राप्त करनेवाले जीव होते ही हैं। भगवान की वाणी खिरे और जीव धर्म प्राप्त न कर सकें—ऐसा नहीं हो सकता। छियासठ दिन तक गणधर पद के योग्य कोई जीव समवसरण में नहीं था और इधर भगवान की वाणी का योग भी नहीं था। छियासठ दिन बाद आज के दिन इन्द्र को विचार आया कि भगवान की वाणी क्यों नहीं खिर रही है ? उसने अवधिज्ञान से जान लिया कि समवसरण में कोई गणधर पद के योग्य जीव उपस्थित नहीं है और वह योग्यता इन्द्रभूति—गौतम में है; इसलिये इन्द्र स्वयं ब्राह्मण का वेश धारण करके इन्द्रभूति को वाद-विवाद के बहाने भगवान के समवसरण में बुला लाता है। समवसरण में दैवी मानस्तंभ अन्य वैभव देखते ही गौतम का मान गल जाता है और वे भगवान के चरणों में झुक जाते हैं। उसी समय भगवान की दिव्यध्वनि खिरती है और गौतम गणधर उसे झेलकर बारह अंग की रचना करते हैं—वही आज का दिवस है।

भगवान की दिव्यध्वनि झेलकर गौतमस्वामी ने जो बारह अंग की रचना की, उसी की परम्परा में धरसेनाचार्यदेव को अमुक ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। वह ज्ञान उन्होंने पुष्पदंत-भूतबलि नामक दो मुनियों को दिया और उन्होंने 'षट्खण्डागम' रूप से उसकी रचना की, जो हजारों वर्ष से ताड़पत्र पर लिखे हुए थे और अब छपकर प्रकाशित हुए हैं। तदुपरांत श्री कुंदकुंदाचार्यदेव को भी महावीर भगवान की परम्परा का कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ था और उन्होंने स्वयं महाविदेह क्षेत्र में जाकर साक्षात् सीमंधर परमात्मा की वाणी सुनी थी। उन्होंने जो समयसारादि महान शास्त्रों की रचना की है, उसमें भी भगवान का उपदेश गूँथा है।

जहाँ भगवान महावीर ने विचरण किया, जहाँ भगवान का प्रथम उपदेश निकला और जीवों ने रत्नत्रय-धर्म की प्राप्ति की, वह विपुलाचल पर्वत तीर्थ है; वहीं से २४वें तीर्थ का प्रवर्तन हुआ है। गणधरदेव ने वहीं बारह अंगरूप शास्त्रों की रचना की है, इसलिये शास्त्र की उत्पत्ति का भी वह तीर्थस्थान है। अहा! गणधरदेव की शक्ति की क्या बात कहें ? चार ज्ञान के धारी, श्रुतकेवली तथा

उत्कृष्ट लब्धियों को धारण करनेवाले गणधरदेव एक अंतर्मुहूर्त में बारह अंग की रचना करते हैं और मुख से भी अंतर्मुहूर्त में बारह अंग का उच्चारण कर सकते हैं—ऐसी उनकी वचनलब्धि है! वे तद्‌भव मोक्षगामी—चरम शरीरी होते हैं। अहा, कहाँ क्षणभर पहले के गौतम जो भगवान महावीर के साथ वाद-विवाद करने आये थे! और कहाँ क्षणभर बाद के गौतम.... जिन्होंने गणधरपद प्राप्त किया और बारह अंग की रचना की! चैतन्य की शक्ति अपार है और वह योग्य पुरुषार्थ करने से क्षणभर में प्रगट होती है।

भगवान की सभा में राजगृही के राजा श्रेणिक मुख्य श्रोता थे; उन्होंने भगवान के चरणों में क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट करके तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया था। वे इस भरतक्षेत्र में आनेवाली चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर होंगे।

तीर्थंकर भगवान की वाणी में से जिन शास्त्रों की रचना हुई वे भी तीर्थ हैं, क्योंकि वे संसार से पार होने के निमित्त हैं। गणधरदेव भी तीर्थी हैं; गणधर तीर्थ की स्थापना भी आज हुई। भगवान के प्रवचन को भी तीर्थ कहा जाता है; उसकी उत्पत्ति भी आज के दिन हुई थी। राजगृही नगरी में पंच शैलपुर (पंच पहाड़ी) है, जहाँ विपुलाचल पर सर्वप्रथम दिव्यध्वनि आज के दिन खिरी थी।—इसप्रकार आज का दिवस मंगल है—शासन महोत्सव का महान दिवस है।

भगवान का उपदेश जीवों को बोधि और समाधि का कारण है; यहाँ 'समाधि शतक' पर प्रवचन हो रहा है, उसमें भी यही बात समझाते हैं।

यह आत्मतत्त्व अमृत से भरपूर है, परम आनन्द से परिपूर्ण है; किंतु मूढ़ जीव उसकी प्रतीति नहीं करते और बहिरात्मबुद्धि से बाह्य विषयों में ही कौतुक करके उसमें प्रीति करते हैं; ज्ञानी को तो आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के समक्ष जगत के बाह्य विषयों का कौतुक छूट गया है।—यह बात श्री पूज्यपादस्वामी इस ६० वीं गाथा में बतलाते हैं—

बहिस्तुष्यति मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे।
तुष्यत्यन्तः प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्तकौतुकः॥६०॥

धर्मी तो जानते हैं कि—अहो! मेरे आत्मा के अनुभव का जो अतीन्द्रिय आनन्द है, वह आनन्द, जगत में अन्यत्र कहीं नहीं है।—ऐसे भाव में धर्मी तो आत्मस्वरूप में ही संतुष्ट हैं; उनको बाह्य विषयों में से कौतुक उड़ गया है; किंतु जिन्हें आत्मा के आनन्द की खबर नहीं है—ऐसा मूढ़ बहिरात्मा, बाह्य विषयों में सुख मानकर उसी का कौतुक करता है तथा उसी में प्रीति करता है,

चैतन्य की प्रीति या उसकी महिमा नहीं करता; वह तो बाह्य में शरीरादि विषयों में ही संतुष्ट वर्तता है; किंतु अरे मूढ़ ! उसमें कहीं भी तेरा सुख नहीं है, सुख तो चैतन्यतत्त्व में ही है; इसलिये एक बार तेरे चैतन्यतत्त्व को जानने का कुतूहल तो कर।

अमृतचंद्राचार्यदेव श्री समयसार में भी कहते हैं कि—अरे जीव ! तू शरीरादि पर-द्रव्यों का पड़ोसी होकर, अर्थात् उनसे पृथक्त्व जानकर एकबार अंतर में अपने चैतन्यतत्त्व को जानने का प्रयत्न कर तो अवश्य तुझे आनन्दविलास सहित अपना चैतन्यतत्त्व अंतर में दृष्टिगोचर होगा। उग्र रुचि एवं उग्र पुरुषार्थ के लिये आचार्यदेव कहते हैं कि तू मरकर भी तत्त्व का कौतूहली था, अर्थात् चैतन्यतत्त्व को जानने में अपना जीवन अर्पित कर दे... जीवन में चैतन्य का अनुभव करने के अतिरिक्त मुझे अन्य कोई कार्य है ही नहीं... लाख प्रतिकूलताएँ आवें या मृत्यु आ जाये, तब भी मुझे अपना चैतन्यतत्त्व जानना है।—इसप्रकार एक बार दृढ़ निश्चय करके सच्ची आकाँक्षापूर्वक प्रयत्न कर तो अवश्य चैतन्य का अनुभव होगा।

अपि कथमपि मृत्वा तत्त्व कौतूहली सन्
अनुभव भवमूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्॥१३॥

अहो, आचार्यदेव कहते हैं कि—उत्कृष्ट रुचि से चैतन्य के अनुभव का प्रयत्न करे तो मात्र दो घड़ी में अवश्य उसकी प्राप्ति हो और मोह नष्ट हो जाये।

ज्ञानी अपने अंतरंग चैतन्य में ही अपना आनन्द देखते हैं, बाह्य कहीं उन्हें सुख का आभास नहीं होता, इसलिये उनकी प्रीति बाह्य से छूटकर अंतरोन्मुख हो गई है। वे ज्ञानी समझाते हैं कि अहो जीवों, अंतर में ही आनन्द है, उसे देखो; बाह्य में आनन्द नहीं है;—इसप्रकार बार-बार समझाने पर भी मूढ़-अज्ञानी जीव, अविवेक के कारण समझता नहीं है और बाह्य-विषयों में—रागादि में ही आनन्द मानकर उनकी प्रीति करता है; चैतन्य की प्रीति नहीं करता; इसलिये उसे समाधि नहीं होती। ज्ञानी को तो चैतन्य के आनन्द के निकट सारे जगत का कौतूहल छूट गया है, इसलिये उनको तो निरंतर समाधि वर्तती है। चैतन्य के आनन्द को जानकर उसकी प्रतीति करना, उसमें लीनता करना ही निर्विकल्प शांति एवं समाधि का उपाय है। मूढ़ अज्ञानी को बाह्य विषयों में तथा राग में सुख भासित होता है, किंतु चैतन्य में सुख भासित नहीं होता। ज्ञानी धर्मात्मा को उन

बाह्य-विषयों में या राग में स्वप्न में भी सुख का आभास नहीं होता; वे तो अंतरंग में अखंड ज्ञानानन्दस्वरूप में उत्साहवान है और बाह्य विषयों से उदासीन हैं; अतः चैतन्य के अतीन्द्रिय सुख की प्रीति करके उसी में लीनता का उद्यम करते हैं।—यही समाधि का उपाय है ॥६०॥

मूढ़ जीव बहिरात्मबुद्धि के कारण शरीरादिक अचेतन द्रव्यों में निग्रह या अनिग्रह करने की बुद्धि रखता है, किंतु चैतन्यभाव में विपरीत भावों का निग्रह तथा सम्यक् भावों का सेवन करना वह नहीं जानता।—यह बात अगली गाथा में कहेंगे।●

गुना (म०प्र०)

श्रीमान् पंडित खेमचन्दभाई के प्रवचन में से

(तारीख २१-९-६२)

[श्री दसलक्षण पर्यूषण पर्व में बाहर गाँव से १५ जगह से विद्वानों के लिये आमंत्रण आये थे, उस मुताबिक १३ गाँवों में सोनगढ़ दि० जैन मुमुक्षु महा मंडल के प्रचार विभाग द्वारा विद्वानों को भेजने में आया था। उसमें मुख्य मुमुक्षु विद्वान वक्ता श्रीमान् पंडित खेमचन्दभाई सा० का इंदौर में कार्यक्रम १५ दिन चला बाद उज्जैन, भोपाल और गुना के समचार दे चुके हैं, किंतु गुना में जो आप द्वारा परम उपकारी पूज्य कानजी स्वामी के परम प्रभाव दर्शक उत्तम प्रवचन दिया गया था, उसमें से साररूप कुछ अंश गुना दि० जैन समाज के अनुरोधवश यहाँ दिया जा रहा है।]

भाईश्री ने सर्व प्रथम मंगल भगवान वीरो मंगलं.... पद बोलते हुवे जैन शासन में भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव का क्या स्थान है, ऐसा बतलाकर उन्होंने इस भरतक्षेत्र में तीर्थंकरतुल्य कार्य किया है। वे महाविदेहक्षेत्र में भगवान श्री सीमंधरदेव के पास गये थे तथा वहाँ आठ दिवस रहकर आये थे

तथा इसके पश्चात् उन्होंने समयसार आदि परमागमों की रचना की, उसमें से समयसारजी की ४१२ वीं गाथा में वे कहते हैं कि ''तू थाप निज को मोक्ष पथ में, ध्या निरंतर तू उसे, उस ही मैं नित्य विहार कर, न विहार कर परद्रव्य में।'' ऐसा हरिगीत बोलते हुये आपने समझाया कि भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव यहाँ जीव को तू मोक्षमार्ग में अपने को थाप अर्थात् मोक्षमार्ग में अपनी स्थापना कर, ऐसा कहकर यही समझा रहे हैं कि अरे जीवो! तुमने आज तक अपने को मोक्षमार्ग में स्थापित नहीं किया है परंतु पर के साथ एकता करके बंधमार्ग में ही स्थापित किया है। सिद्ध समान सदा पद मेरो, शक्ति, में सिद्ध समान हूँ, एकमात्र ज्ञातादृष्टा हूँ, शरीर, मन, वाणी, पुण्य-पाप विकार का मैं कर्ता नहीं हूँ; ऐसा ज्ञायकस्वभाव का स्वीकार और आश्रय करके पर के साथ भिन्नपना तथा स्व के साथ अभिन्नपना प्रगट करना, उसी का नाम धर्म है और तभी मोक्षमार्ग में अपने को स्थापित किया जा सकता है। इसीप्रकार तत्त्वार्थों की अनेक उपयोगी बातें बतलाकर ११ बजे व्याख्यान समाप्त किया।

दिनांक १९-९-६२ मध्याह्न दो बजे से ज्ञान गोष्ठी, और शंका समाधान का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ, सर्वप्रथम ब्रह्मचारी श्री भगवानदासजी राधोगढ़ ने मोक्षमार्गप्रकाशक में से 'स्वआश्रित सो निश्चय तथा पराश्रित सो व्यवहार' नामक प्रकरणा विशेष समझने के लिये भाईश्री के समक्ष रखा। इसका स्पष्टीकरण देते हुए भाईश्री ने स्वआश्रित सो निश्चय, पराश्रित सो व्यवहार, अभेद सो निश्चय, भेद सो व्यवहार तथा मुख्य सो निश्चय, गौण सो व्यवहार, प्रत्येक बोलों को तीन-तीन बोल द्वारा बहुत ही सुंदर ढंग से समझाते हुवे कहा कि वीतरागी जिनशासन में एकमात्र ज्ञायक-स्वभाव का आश्रय करना ही मूल प्रयोजन है कारण कि जीव ने अनंत काल में अपने ज्ञायक-स्वभाव का आश्रय न करने सबकुछ किया है परंतु उसका संसार जैसा का तैसा ही चालू रहा है। छहढाला में श्री दौलतरामजी ने कहा है कि 'मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रीवक उपजायो' तथा इसी विषय को दृढ़ करते हुवे आपने कहा कि समयसारजी के ५० वें कलश में आचार्यदेव ने ज्ञायकस्वभाव की मुख्यता करते हुवे 'ज्ञानी तो सदाकाल अपनी और पर की परिणति को जानता, देखता हुआ ही प्रवर्तता है।' यदि इस एक ही सिद्धांत का जीव सेवन करे तो उसका संसार-परिभ्रमण टले बिना न रहे। इसी सिद्धांत को लंबाते हुये आपने उसमें जीवादिक सात तत्त्व, हेय-उपादेय आदि अनेक बोल द्वारा समझाकर यह बतलाया कि इसमें सम्पूर्ण जैन दर्शन आ जाता है। अत: कल्याण के इच्छुक जीवों को मैं सदैव ज्ञातादृष्टा हूँ, शरीर-मन-वाणी का कर्ता नहीं है—ऐसा

स्वीकार करना चाहिये, ऐसा स्वीकार किये बिना जीव का कभी भी हित नहीं हो सकता। विषय इतना पसंद आया कि प्रवचन के निश्चित समय से आधा घंटा अधिक चला। इसप्रकार मध्याह्न का कार्यक्रम सत्पन्न हुआ।

प्रवचन का तीसरा कार्यक्रम रात्रि में साढ़े आठ से प्रारम्भ हुआ। जैन समाज के अतिरिक्त अन्य अजैन समाज ने भी भाग लिया। जिला अध्यक्ष (कलेक्टर) श्री एम.पी. श्रीवास्तव साहब एवं श्री ए.डी.जे. श्री एस.सी. जैनी ने भी प्रवचन में भाग लिया, इस समय में जो प्रवचन हुआ उसका विषय श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजन तथा अष्ट द्रव्य चढ़ाते समय हमारी कैसी विचारधारा होनी चाहिये और पूजन का क्या महत्त्व है, था। यह विषय सर्व साधारण को बहुत रुचिकर था। आपने पूजन का विषय प्रारम्भ करते समय श्रोताओं को यह बात स्पष्ट तौर से बतायी कि हम पूजन का निषेध नहीं कर रहे हैं परंतु पूजन करते समय हमारी कैसी विचारधारा होनी चाहिये और उससे हमें क्या भलामण मिलती है, यह बराबर जान लेना चाहिये तथा यह भी बतलाया कि हम पुण्य का भी निषेध नहीं करते परंतु पुण्य, वह धर्म नहीं है। जो जीव, पुण्य को धर्म स्वीकार नहीं करते, ऐसे सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा ही तीर्थंकर, सौधर्म इन्द्र एवं सर्वार्थसिद्धि आदि के देव जैसे उच्च पद पा सकते हैं। जो जीव, पुण्य को हितकर मानते हैं- ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव कदापि काल ऐसा ऊँचा पुण्य ही नहीं बाँध सकते। इस दिन अष्ट द्रव्य के केवल जल एवं चंदन संबंधी दो बोल ही चल सके तथा एक घंटे का समय शीघ्र ही व्यतीत हो गया।

दिनांक २०-९-६२ गुरुवार को प्रात:, दोपहर, एवं रात्रि में तीनों टाइम प्रवचन, ज्ञान गोष्ठी आदि के कार्यक्रम दिनांक १९९-९२ के भाँति बड़ी अच्छी तरह से सम्पन्न हुये, इनमें भाईश्री ने क्रमश: चार प्रकार का अस्तित्व, संयोग-संयोगी भाव, स्वभाव स्वभाव के साधन, एवं सिद्धत्व तथा शब्दनय, अर्थनय, ज्ञाननय तथा पूजा के अक्षत से लेकर अर्थपर्यंत समस्त बोलों को तथा, तत्त्वचर्चा में आये हुये क्रमबद्ध आदि विषयों पर बड़े ही सुंदर ढंग से विशद स्पष्टीकरण करते हुये अंत में यही बात सिद्ध की कि जीवों को इन सबका स्वरूप बतलाने में एकमात्र यही प्रयोजन है कि वह पर से भिन्नत्व तथा स्वभाव के साथ एकत्व को प्राप्त करे। समयसार गाथा तीन का उल्लेख करते हुये आपने बताया कि वही एकमात्र सुंदर है, इसके अतिरिक्त अन्य सर्व असुंदर है।

इसी दौरान में आपने इस बात का भी उल्लेख किया कि लोग समयसार आदि शास्त्रों के स्वाध्याय करने का निषेध करते हैं और यह कहते हैं कि उसमें एकमात्र निश्चय को ही दर्शाया है।

उसका उत्तर देते हुये आपने बताया कि उनका इसप्रकार कहना ठीक नहीं है। समयसार गाथा एक से लेकर बारह तक के हरिगीत पढ़ते हुये आपने बतलाया कि समयसार शास्त्र में निश्चय और व्यवहार दोनों को दर्शाया है। समयसार शास्त्र में अत्यंत अप्रतिबुद्ध को (गाथा ३८ टीका आदि) अज्ञानियों को समझाने में अनेक जगह आया है, इसलिये उनका अभ्यास करना हम लोगों के लिये परमावश्यक है। मोक्षमार्गप्रकाशक का उल्लेख करते हुये आपने बताया कि श्री टोडरमलजी साहब ने स्वयं अपने इस ग्रंथ में इस बात का उल्लेख किया है कि द्रव्यानुयोग के शास्त्रों का वाँचन, सुनना नीचली भूमिका के जीवों को परमावश्यक है कारण कि उनमें आत्मा की बात मुख्यपने की गई है। मुनि का स्वरूप क्या है, ऐसा प्रश्न आने पर आपने मुनि का स्वरूप बताते हुये कहा कि जिन्हें अपने ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से तीन प्रकार की कषायों का अभाव हुआ है और जिन्हें कोई प्रकार का शरीर पर एक धागा मात्र भी परिग्रह नहीं होता है और जो स्वरूप साधना में लीन रहते हैं, ऐसे निर्ग्रंथ, दिगम्बर जैन के मुनि होते हैं। उन्हें अट्ठाईस मूलगुणों का निरतिचार पालन होता है तथा वे अपने खातिर बनाया हुआ आहार-पानी नहीं लेते तथा रात्रि में पिछले पहर अड़तालीस मिनट से कम एक बार में नींद लेते हैं, जो अड़तालीस मिनिट से अधिक एक बार में नींद लें तथा अपने को मुनि मानें, वह सच्चे मुनि नहीं हैं। द्रव्यलिंगी मुनि को बाहर में कोई प्रकार का परिग्रह नहीं होता तथा वे निरतिचार २८ मूलगुणों का पालन करते हैं, परंतु उन्हें आतमज्ञान न होने से धर्म की दशा प्रगट नहीं होती तो जिनके २८ मूलगुणों का ही ठिकाना न हो, उन्हें सच्चा मुनि कैसे माना जा सकता है ? आपने इस बात का भी उल्लेख किया कि सोनगढ़वाले जैन मुनियों को नहीं मानते, सो ऐसी बात नहीं है परंतु इतना अवश्य है कि वे, जो सच्चे मुनि नहीं है, उन्हें जरूर सच्चे मुनि नहीं मानते। भावलिंगी मुनि वह तो आत्मा का पवित्र पद है, चैतन्य की सम्पदा है, वह हमारे लिये पूज्य हैं, उसे मानने से कौन इंकार कर सकता है। साथ ही साथ आपने इस बात का भी उल्लेख किया कि यहाँ मुनियों की निंदा नहीं की जा रही है, परंतु सम्यग्दर्शन प्रगट करने से पूर्व सच्चे देव, गुरु तथा शास्त्र का स्वरूप जैनमत में कहे अनुसार यथार्थ जानना पड़ेगा, इसके बिना कभी भी सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं हो सकता। इसलिये यहाँ मुनि का स्वरूप क्या है, ऐसा प्रश्न आने से उसका उत्तर दिया।

इसके पश्चात् सर्प-नेवला की लड़ाई का तथा उसमें नोर्वेल (नेवली औषधि) का दृष्टांत देते हुये समझाया कि नेवला तथा सर्प में स्वाभाविक बैर होने से जब नेवला सर्प से लड़ाई लड़ता है और जब सर्प द्वारा काटे जाने पर अपने को विष चढ़ता हुआ देखता है, तब नारबेल नामक औषधि

को सूंघकर आने पर उसका विष उतर जाने से पुनः सर्प से आकर लड़ने लगता है और सर्प को मार डालता है। इसीप्रकार ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से वर्तमान में बरतनेवाले रागादि विकारी पर्यायों पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपने में उत्पन्न न होने देकर एक दिन स्वभाव के आश्रय से ही उनका सर्वथा क्षय करके परिपूर्ण शुद्ध हो जाता है।

इसके पश्चात् भाईश्री ने 'मुझे बुलाकर; आपने जो शांति से वस्तुस्वरूप की बात सुनी उसके लिये तथा मेरी असावधानी से अथवा वस्तुस्वरूप बतलाते समय किसी प्रसंग को लेकर यदि किसी के अंतरंग में कोई प्रकार का विकार भाव उत्पन्न हुआ हो, उसके कारण किसी को कष्ट हुआ हो, उसके लिये मैं क्षमा चाहता हूँ'—ऐसा कहकर अपना दो दिवसीय व्याख्यान आदि का कार्य सम्पन्न किया।

इसके पश्चात् अभिनंदन पत्र, परिचय एवं आभार प्रदर्शन आदि के कार्यक्रम प्रारम्भ हुये। इसमें सर्वप्रथम मुमुक्षु मंडल के एक जिज्ञासु भाई श्री मांगीलाल जैन ने आपका परिचय देते हुये बताया कि ''भगवान आत्मा के रहस्य को जानकर जिन्होंने अपने स्वभाव के आश्रय से अपना जीवन सफल किया है और जिनके प्रताप से आज स्वर्णपुरी (सोनगढ़) तीर्थधाम बन गया है, अज्ञानअन्ध जीवों को प्रकाश स्तम्भ बन गया है, ऐसे परम पूज्य अध्यात्मयोगी श्री कहानगुरुदेव के निकट रहकर सांसारिक व्यवसाय आदि से निवृत्ति लेकर आप अपना आध्यात्मिक जीवन यापन करते हैं, स्वर्णपुरी के जो प्रधान मुमुक्षु हैं तथा जिनके निकट रहकर मुझे गत सात वर्षों से प्रौढ़ शिक्षण वर्ग में शिक्षा प्राप्त करने का योग मिला है। इसलिये आप हमारे लिये एक सुयोग्य अध्यापक भी हैं। आपकी वस्तु स्वरूप समझाने की शैली इतनी सुगम है कि वह सर्व साधारण से साधारण जीवों के सहज ही समझ में आ जाती है। पिछले दो दिनों के कार्यक्रम में आपका परिचय सभी लोगों के सामने आ गया है। अध्यात्म वार्ता से जीवों को अरुचि न हो, इस बात को ख्याल में रखते हुये तथा वह बात जीवों के ख्याल में आ जावे, इस हेतु आप ऐसा कहकर कि 'मैं बारम्बार भूल जाता हूँ; इसलिये बारबार कहकर याद कर लेता हूँ तथा मैं किसी को समझा भी नहीं सकता हूँ, मैं तो मात्र अपना स्वाध्याय करता हूँ'—ऐसा कहकर निरभिमानपना प्रगट करते हुये वस्तुस्वरूप समझाना तथा अपने हित में प्रयत्नशील रहना, यही आपका वास्तविक परिचय है। सेठाई आदि वह आत्मा का सच्चा परिचय नहीं है; इसलिये यहाँ वह परिचय देना आवश्यक नहीं समझता हूँ, मैं तो आपका एक विद्यार्थी हूँ; इसलिये मैं विशेष परिचय देने में भी समर्थ नहीं हूँ।''

इसके पश्चात् श्री दिगम्बर जैन समाज की ओर से दिये जानेवाले अभिनंदन पत्र को श्री गट्टूलालजी राखन ने पढ़कर सुनाया।

पश्चात् यही अभिनंनदन पत्र चंदन के कास्केट में मुमुक्षु मंडल के अध्यक्ष श्री पन्नालालजी पांड्या द्वारा भेंट किया गया तथा इसके पश्चात मुमुक्षु मंडल के जिज्ञासु भाई श्री जमुनाप्रसादजी एडवोकेट के द्वारा आपका समाज की ओर से एवं मुमुक्षु मंडल की ओर से पूज्य गुरुदेवश्री के, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंटिर ट्रस्ट सोनगढ़ के प्रति तथा भाईश्री के प्रति बहुत-बहुत आभार प्रदर्शित किया गया तथा भाईश्री को हमारे कारण जो कष्ट हुआ उसके लिये क्षमायाचना चाही।

भाईश्री खेमचन्दजी भाई ने बड़े ही विचारपूर्वक अंत में कहा कि 'आपने जो मुझे अभिनंदन पत्र दिया, वह पूज्य गुरुदेव का ही प्रताप है तथा वही इस अभिनंदन पत्र के सच्चे पात्र हैं। मुझे आपने अभिनंदन पत्र दिया तथा मुझे उसके ग्रहण संबंधी राग प्रगट हुआ, मैं तो अपना सच्चा अभिनंदन तब ही समझूँगा जब कि मैं अभिनंदन पत्र संबंधी राग का भी अभाव करके अपने स्वरूप में लीन हो जाऊँगा।' आपके ऐसे वचन सुनते ही सारा प्रवचन मंडल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा तथा पूज्य श्री कहान गुरुदेव की जय हो, ऐसा जयकार का नाद हुआ।

आपका—

मांगीलाल जैन, मंत्री

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल गुना (म.प्र.)

पुस्तकें तथा आत्मधर्म मंगानेवालों से

नम्र प्रार्थना

आप पत्र लिखते समय पते में, पोस्ट, गाँव, जिला, रेलवे लाईन बराबर साफ अक्षरों में लिखने का कष्ट कीजिये, हरेक बार यह लिखना जरूरी है और मनीऑर्डर से दाम भेजते समय सिर्फ पुस्तक का मूल्य न भेजें, या तो वी.पी. मंगावें अथवा पोस्टेज पेकिंग चार्ज भी भेजें।

—प्रकाशक

सुप्रभात का उदय

जिसने अनेकांत दृष्टि द्वारा चिदानंदस्वभाव का निर्णय किया, उसकी स्वसन्मुखता में चैतन्य ज्ञानानंद से विलसित, शुद्ध प्रकाश से शोभायमान आनन्दमय सुप्रभात उदित होता है। अहा, ज्ञानस्वरूप आत्मा को पहिचानकर जिसने उसमें प्रवृत्ति को तथा परभावों से निवृत्त हुआ.... अर्थात् चैतन्य भूमिका का आश्रय लिया, उसके सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-आनन्द एवं वीर्य से जगमगाता हुआ मंगल प्रभात उदित हुआ। आत्मा में यह प्रभात उदित हुआ सो हुआ... अब कभी वह अस्त नहीं होगा; उसके विकास को कोई रोक नहीं सकता।

अहा, ऐसा सुप्रभात उदित करनेवाले संत केवलज्ञान भंडार की खोज में वन में बैठे-बैठे अंतर की गहराई में उतरकर आनन्दसागर में निमग्न होते हैं। उन्हें देखकर चक्रवर्ती को भी ऐसा लगता है कि—वाह प्रभो! आप चैतन्य की साधना कर रहे हैं... अभी हाल आपका आत्मा अनंत चतुष्टयरूप साध्य को प्रगट करके सुप्रभातरूप से जगमगा उठेगा... ऐसा कहकर उनके चरणों में चक्रवर्ती भी मस्तक झुकाते हैं।

जो अंतर्मुख होकर चैतन्यस्वभाव की श्रद्धा करेगा, उसे अल्प काल में केवलज्ञान प्रकाश से झिलमिलाता हुआ सुप्रभात पूर्णरूप से उदित होगा—ऐसा संतों का आशीर्वाद है।

(—सुप्रभात के प्रवचन से)

संतों की छाया में—

पात्रता की पुष्टि

कुछ ही दिन पूर्व एक प्रवचन में पूज्य गुरुदेव ने 'निश्चय के उपासक जीव की व्यवहार शुद्धि कैसी होती है'—उसका वर्णन अत्यंत सुंदर शैली में सरल ढंग से किया था कि—'जो जीव निश्चय की उपासना करने के लिये कटिबद्ध हुआ है, उसकी परिणति में क्रमश: वैराग्य की वृद्धि होती जाती है और दोष का उसे भय बना रहता है। अकषायस्वभाव को साधने के लिये तत्पर हुआ, वहाँ उसके कषाय शांत होने लगते हैं, राग-द्वेष घटने लगते हैं; उसकी कोई प्रवृत्ति अथवा आचरण ऐसे नहीं होते जिनमें रागादि का पोषण हो। पहले रागादि की मंदता थी और फिर तीव्रता हो जाये तो यह कैसे कहा जा सकता है कि वह जीव स्वभाव-साधना की ओर बढ़ रहा है ? मात्र ज्ञान-ज्ञान करते रहने से कुछ नहीं होता; ज्ञान के साथ राग की मंदता होना चाहिये; धर्मात्मा के प्रति विनय, बहुमान, भक्ति, नम्रता, कोमलता होना चाहिये; अन्य साधर्मीजनों के प्रति अंतर में वात्सल्य भाव होना चाहिये, वैराग्य होना चाहिये, शास्त्राभ्यास आदि का प्रयत्न होना चाहिये.... इसप्रकार चारों ओर से—सभी पक्षों से—पात्रता प्राप्त करें, तभी ज्ञान यथार्थ परिणमित होता है। सचमुच, साक्षात् सत्समागम की बलिहारी है ! सत्संग में तथा संत-धर्मात्मा की छत्रछाया में रहकर उनके पवित्र जीवन को दृष्टि समक्ष ध्येयरूप से रखकर, सर्वप्रकार से उद्यम कर-करके अपनी पात्रता को पुष्ट करना चाहिये।'

हमारा सद्‌भाग्य है कि पूज्य गुरुदेव दिन-रात हमें आत्मा की उपासना का मार्ग समझाकर हमारे जीवन का निर्वाण कर रहे हैं। गुरुदेव के उपकार का वर्णन करते हुए वाणी रुक जाती है। उनके बतलाये हुए मार्ग पर चलकर हम सब शीघ्र ही उनके उपकार को सार्थक करें ऐसी हमारी भावना है !

—जगुभाई दोशी (सम्पादक)

वीर प्रभु का मार्ग

(वीर संवत् २४८८ की दीपावली के अवसर पर पूज्य गुरुदेव का प्रवचन)

['शील प्राभृत' गाथा ११-१२ से]

आज भगवान महावीर परमात्मा ने पावापुरी से मोक्ष प्राप्त किया। भगवान का आत्मा आज पूर्ण निर्मल पर्यायरूप से परिणमित हुआ और भगवान सिद्ध पद को प्राप्त हुए। पावापुरी में इंद्रों तथा राजा-महाराजाओं ने निर्वाण-महोत्सव मनाया था। उसी दीपावली तथा नूतनवर्ष का आज दिवस है। भगवान के निर्वाण का आज २४८८ वाँ वर्ष लग रहा है। भगवान पावापुरी से स्वभाव ऊर्ध्वगमन करके ऊपर सिद्धालय में विराज रहे हैं। अनादिकाल में कभी नहीं हुई थी, ऐसी दशा आज भगवान की पावापुरी में प्रगट हुई; इसलिये पावापुरी भी तीर्थधाम है। सम्मेदशिखर की यात्रा के समय पावापुरी की यात्रा करने गये, तब वहाँ भगवान का अभिषेक किया था; वहाँ सरोवर के बीच में—जहाँ से भगवान मोक्ष पधारे थे—भगवान के चरण कमल हैं। तीर्थंकरों का द्रव्य त्रिकाल मंगलरूप है तथा जो जीव केवलज्ञान प्राप्त करनेवाला है, उसका द्रव्य भी त्रिकाल मंगलरूप है।

भगवान का आत्मा त्रिकाल मंगलस्वरूप है। उनका द्रव्य तो त्रिकाल मंगलरूप है, जहाँ से मोक्ष को प्राप्त हुए, वह क्षेत्र भी मंगल है; आज मोक्ष प्राप्त किया, इसलिये आज का काल भी मंगलरूप है और भगवान के केवलज्ञानादिरूप भाव भी मंगलरूप हैं;—इसप्रकार भगवान महावीर परमात्मा द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से मंगलरूप हैं। भगवान के मोक्ष प्राप्त करने पर यहाँ भरतक्षेत्र में तीर्थंकर का विरह हुआ। भगवान का स्मरण करके भगवान के भक्त कहते हैं कि—हे नाथ! आपने चैतन्यस्वभाव में अंतर्मुख होकर आत्मा की मुक्तदशा साध ली और दिव्यवाणी द्वारा हमें उसी आत्मा का उपदेश दिया।—ऐसे स्मरण द्वारा श्रद्धा-ज्ञान की निर्मलता करे, वह मंगल काल है; जहाँ ऐसी निर्मल दशा प्रगट हो, वह मंगल क्षेत्र है; श्रद्धा-ज्ञान का जो भाव है, वह मंगल भाव है और आत्मा स्वयं मंगलरूप है। भगवान का मोक्षकल्याणक मनाने के बाद इंद्र और देव नंदीश्वर द्वीप में जाकर वहाँ आठ दिन तक उत्सव मनाते हैं।

आज भगवान के निर्वाण का दिवस है; और इस 'अष्ट प्राभृत' में भी आज निर्वाण की ही गाथा पढ़ी जा रही है। निर्वाण किसप्रकार तथा कैसे पुरुष को होता है, वह बात शील प्राभृत की ११-१२ वीं गाथा में कहते हैं—

णाणेण दंसणेण य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
होहदि परिणिव्वाणं जीवाणं चरित्तसुद्धाणं ॥११ ॥

उपयोग को अंतर्मुख करके धर्मी जीव चैतन्य के शांतरस का अनुभव करते हैं। जिसप्रकार कुएँ की गहराई में से पानी खींचते हैं, उसीप्रकार सम्यक् आत्मस्वभावरूप कारणपरमात्मा को ध्येयरूप से पकड़कर, उसमें गहराई तक उपयोग को उतारने से पूर्ण शुद्धता होती है और इसी रीति से परिनिर्वाण होता है। निर्वाण कोई बाह्य वस्तु नहीं है किंतु आत्मा की पर्याय परम शुद्ध हो गई तथा विकार से छूट गई, उसी का नाम निर्वाण है।

भगवान का मनुष्य शरीर था, इसलिये अथवा वज्रवृषभनाराचसंहनन था, इसलिये निर्वाण हुआ – ऐसा नहीं है; किंतु समयग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप से भगवान ने मुक्ति प्राप्त की है। यह भगवान महावीर का शासन चल रहा है। भगवान अपने परम आनन्द में तृप्त हो रहे हैं.... अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। ऐसी निर्वाणदशा का आज मंगलदिवस है और यह निर्वाण के उपाय की गाथा भी मंगल है। इसप्रकार दीपावली मंगलमय है।

जिसने चैतन्य में ही उपयोग लगाकर उसे बाह्य ध्येय से विमुख किया है अर्थात् विषयों से विरक्त होकर चैतन्य के आनन्द–रस का स्वाद लेता है, आनन्दानुभव को उग्र बनाकर स्वाद में लेता है, ऐसे पुरुष नियमपूर्वक ध्रुवरूप से निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

देखो, यह निर्वाण का ध्रुवमार्ग! अंतर्मुख होकर जिसने ऐसा मार्ग प्रगट किया, वह वहाँ से लौटता नहीं है.... ध्रुवरूप से निर्वाण को प्राप्त करता है। दर्शनशुद्धिपूर्वक दृढ़ चारित्र द्वारा जो जीव चैतन्य में एकाग्र होता है, उसे बाह्य विषयों से विरक्ति हो जाती है, उसी का नाम शील है और ऐसा शीलवान जीव अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है। चैतन्यध्येय से च्युत होकर जिसने पर को ध्येय बनाया है, उस जीव के शील की रखा नहीं है, उसके दर्शनशुद्धि नहीं है, उसके उपयोग में राग के एकतारूपी विषयों का ही सेवन है। जिसने चैतन्यस्वभाव की रुचि प्रगट की है और राग की रुचि छोड़ी है, उसको चैतन्यध्येय से बाह्य विषयों का ध्येय छूट जाता है।—ऐसा शील निर्वाणमार्ग में प्रधान है।—इसप्रकार से दो गाथाओं में तो दर्शनशुद्धि के उपरांत चारित्र की बात कहकर साक्षात् निर्वाण मार्ग का कथन किया।

अब, एक दूसरी बात कहते हैं—किन्हीं ज्ञानी धर्मात्मा को कदाचित् विषयों से विरक्ति न हुई हो अर्थात् चारित्रदशा की स्थिरता प्रगट न हुई हो, किंतु श्रद्धा बराबर है, तथा मार्ग तो विषयों की

विरक्तिरूप ही है—इसप्रकार यथार्थ प्रतिपादन करते हैं, तो उन ज्ञानी को मार्ग की प्राप्ति कही जाती है। सम्यक् मार्ग का स्वयं को भान है और उसी का भलीभाँति प्रतिपादन करते हैं, किंतु अभी विषयों से विरक्तिरूप मुनिदशा आदि नहीं है—अस्थिरता है, तो भी वे ज्ञानी धर्मातमा मोक्षमार्ग के साधन हैं, वे मंगलरूप हैं, उन्हें इष्टमार्ग की प्राप्ति है और यथार्थ मार्ग दर्शानेवाले हैं, इसलिये उनके द्वारा दूसरों को भी सम्यक्मार्ग की प्राप्ति होती है। किंतु जो जीव विषयों से—राग से लाभ मनाता है, उसे तो सम्यक्मार्ग की श्रद्धा ही नहीं है, वह तो उन्मार्ग पर है तथा उन्मार्ग का बतलानेवाला है। धर्मात्मा को राग होता है किंतु उसे वे बंध का ही कारण जानते हैं; इसलिये राग होने पर भी उनकी श्रद्धा में विपरीतता नहीं है; उन्हें मार्ग की प्राप्ति है और उनसे दूसरे जीव भी मार्ग प्राप्त कर सकेंगे। सत्मार्ग को प्राप्त जीव ही सत्मार्ग की प्राप्ति में निमित्तरूप होते हैं।

अज्ञानी राग से स्वयं लाभ मानता है और दूसरों को भी मनवाता है, इसलिये वह स्वयं मार्ग से भ्रष्ट है और उसके निकट मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। अहा, चैतन्य के श्रद्धा-ज्ञान तथा उसमें लीनतारूप वीतरागता ही मोक्ष का मार्ग है। ऐसी वीतरागता ही मोक्षार्थी का कर्तव्य है, राग किंचित् कर्तव्य नहीं है। राग का एक कण भी मोक्ष को रोकनेवाला है, वह मोक्ष का साधन कैसे हो सकता है ?—ऐसी ज्ञानी को श्रद्धा है। **ज्ञानी, जहाँ पुण्यभाव को छोड़ने योग्य मानते हैं, वहाँ वे पाप में स्वच्छंदतापूर्वक कैसे वर्तेंगे ? चारित्रदशारहित हों तो भी सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्ग में ही हैं, क्योंकि उन्हें वीतराग चारित्र की भावना है और राग की भावना नहीं है।** श्रद्धा में वे सारे जगत से विरक्त हैं, ज्ञान-वैराग्य की अद्भुत शक्ति उनको प्रगट हुई है; अंतर में चैतन्य को ध्येय बनाकर राग से भिन्नता का भान हुआ है।—ऐसे भान बिना कोई राग से लाभ माने तथा उसका प्ररूपण करे तो वह उन्मार्ग में है, उसके ज्ञान का विकास निरर्थक है; भगवान के मार्ग को उसने नहीं जाना है। भगवान किसप्रकार मोक्ष को प्राप्त हुए—उसकी उसे खबर नहीं है। अस्थिरता के कारण सम्यक्त्वी के विषय न छूटें, तथापि उनका ज्ञान नहीं बिगड़ता; दृष्टि के विषय में शुद्धचैतन्यस्वभाव को पकड़ा है, वह कभी नहीं छूटता; उस ध्येय के आश्रय से वे सम्यक्मार्ग में वर्तते हैं; मोक्ष के माणिक स्तंभ उनके आत्मा में जम गये हैं.... वीर प्रभु के मंगलमार्ग पर चलकर वे भी मुक्ति को साध रहे हैं।

पूर्णतारूप परिनिर्वाण मंगलरूप है और उसके प्रारम्भरूप सम्यक्त्व भी मंगलरूप है।

—इसप्रकार साध्य और साधक दोनों की बात आज दीपावली के मांगलिक में आयी है।

सुवर्णपुरी (सोनगढ़) समाचार

परम उपकारी पूज्य गुरुदेव सुखशांति से विराज रहे हैं। प्रवचन में सबेरे प्रवचनसारजी शास्त्र ४७ नयों का अधिकार और दोपहर को समयसारजी शास्त्र चलता है। प्रवचन में १३वीं बार श्री समयसारजी शास्त्र के प्रवचन आश्विन वदी ९, रविवार के दिन पूर्ण होकर उसी मांगलिक दिन फिर १४वीं बार सभा में श्री समयसारजी शास्त्र पर प्रवचनों का बहुत उत्साहपूर्वक प्रारम्भ हुअ।

श्री समयसारजी शास्त्र को गाजे-बाजे के साथ रथयात्रा-जुलूस में घुमाकर आसोज वदी १० श्री मुकुन्दभाई खारा के नये मकान में मंगल वास्तु निमित्त प्रवचन करना होने से उन्हीं के मकान में सुशोभित भव्य मंडप में श्री समयसारजी शास्त्र विराजमान करके जिनवाणी-शास्त्रजी की जयनाद सहित सभी ने भक्ति की। बाहर गाँवों से बड़ी संख्या में मेहमान पधारे थे, सभा में पूज्य स्वामीजी ने श्री समयसारजी शास्त्र का मंगल प्रवचन किया, उसमें परमपूज्य, परम उपकारी आचार्यदेव श्री कुंदकुंदाचार्य, श्री अमृतचंद्राचार्य आदि संतों की अपार महिमा दर्शाकर, अत्यन्त उपकार माना। 'नमः समयसाराय' कलश के ऊपर प्रवचन करके सामान्यतया एक सर्वज्ञ परमात्मा और विशेषतया पंच परमेष्ठी तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसा अष्ट अर्थ करके अद्भुत वर्णन किया, जिसमें परम अध्यात्म तरंगिणी नामक शास्त्र का आधार लिया गया था।

१४वीं बार श्री समयसारजी शास्त्र के ऊपर प्रवचन प्रारम्भ हुआ, उसके उल्लास और भक्ति में श्री कमला बहिन पूरणचंद गोदिका जयपुरवालों ने चौदह हजार रुपया ज्ञान प्रचार आदि खाते में दान किया। श्री पूरणचंदजी गोदिका, आप श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी के परम मित्र हैं, आपको जैनधर्म में अपूर्व प्रेम हुआ है और दोनों मित्र पूज्य स्वामीजी को बम्बई जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के पवित्र अवसर पर पधारने की विनती करने के लिये आये थे।

इस साल जोरावरनगर तथा बम्बई में नया जिनमंदिर हो रहा है, यहाँ श्री जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव होनेवाला है, दहेगाम नांदोल (अहमदाबाद) में नया जिनमंदिर में जिनेन्द्र वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव होनेवाला है, तथा उत्तर भारत में भी दो शहर में (भोपाल और उज्जैन) में खास धार्मिक उत्सव होनेवाला है, इसलिये पूज्य कानजीस्वामी का विहार होगा।

(शायद दक्षिण भारत में यात्रार्थ जाना होवे तो होवे, निर्णय नहीं किया है।)

स्वामीजी के विहार के पवित्र प्रसंग का सभी धर्म जिज्ञासुओं को लाभ मिले, इसलिये

उमराला, बोटाद, राणपुर, वींछीया, लींबड़ी, वर्धमानपुरी, वांकानेर, मोरबी, सुरेन्द्रनगर, जोरावरनगर, जामनगर, राजकोट, गोंड़ल, जेतपुर, वडीया, लाठी-कलापीनगर, अहमदाबाद, दहेगाम, बम्बई, सनावद आदि शहर में से पूज्य स्वामीजी अपने शहर में पधारें, ऐसी विनती करने के लिये लोग बड़ी संख्या में पधारे थे।

पूज्य स्वामीजी का पुनीत विहार पोष मास में होगा, उसका कार्यक्रम निश्चित होने पर सूचित किया जायेगा। बम्बई के मुमुक्षु भाईयों को बड़ा भारी उत्साह है, और इसलिये खास बड़ी संख्या में भाईयों को साथ में लाकर मुमुक्षु मंडल के प्रमुख श्री मणिभाई जे. सेठ तथा नवनीतभाई सी. जवेरी, श्री पूरणचंदजी गोदिका आदि आये थे। वहाँ दादर विभाग में, श्री कहाननगर सोसायटी में भव्य जिनालय तथा श्री समवसरणजी जिनमंदिर तैयार हो रहा है, उसमें श्री जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव संवत २०१९, गुजराती चैत्र वद ८ के दिन हैं। जोरावरनगर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव माह सुद १३ के दिन है तथा दहेगाम-नांदोल (जिला अहमदाबाद) नूतन जिनमंदिर में जिनेन्द्र वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव माह वद पंचमी को है। तारीख २४-१०-६२ श्री दीपचंदजी शेठिया (सरदारशहर), श्री सोभाचंदजी (रतनगढ़-राज०) पूज्य गुरुदेव के दर्शनार्थ आये थे।

हितोपदेश

पावापुरी मुक्तिधाम में भावपूर्ण प्रवचन करते हुए गुरुदेव ने कहा कि—जिसप्रकार नदी के प्रवाह में लहरें उठती हैं, उसीप्रकार ज्ञानी के हृदय में सम्यग्ज्ञान का प्रवाह बहता है, उसमें यह भक्तिरूपी लहरें उठी हैं। ज्ञानी की स्तुति भी भिन्न प्रकार की होती है; वह भगवान को पहिचानकर और उनके कथन की परीक्षा करके भगवान की स्तुति करता है। भगवान सर्वज्ञ थे, भगवान वीतराग थे, भगवान हितोपदेशी थे; भगवान ने हितोपदेश में क्या कहा? भगवान ने स्वयं तो अपने आत्मा का परमहित साध लिया और फिर उनकी वाणी में उसी हित का उपदेश निकला कि—अहो आत्मा! तेरा स्वभाव एक क्षण में परिपूर्ण ज्ञान-आनन्द से परिपूर्ण है; हमारे और तेरे आत्मा में कोई अंतर नहीं है। तू जो हित प्राप्त करना चाहता है, वह तेरे आत्मा की शक्ति में से ही आयेगा, कहीं बाहर से नहीं आता; इसलिये अपने स्वभाव में अंतर्मुख हो!—इसप्रकार स्वभावोन्मुख होने का जो परम हितोपदेश सर्वज्ञ भगवान ने दिया, उसी से भगवान की महत्ता है।

आनन्द से भरपूर मंगल-प्रभात

सुप्रभातरूप संतों का आत्मा स्वयं तो आनन्दरूप है, और दूसरे जीवों के लिये भी वह आनन्द का कारण है।

[वीर संवत् २४८८, कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा (नूतन वर्ष) के मंगल-प्रवचन से]

आज नूतन वर्ष का सुप्रभात है। वास्तव में तो आत्मा में सम्यग्दर्शनरूपी सुप्रभात का सूर्य उदित हो, वह सर्वश्रेष्ठ सुप्रभात है; और आत्मा की शक्ति में से अनंत चतुष्टय प्रगट हो; केवलज्ञान-केवलदर्शन-अनंतसुख तथा अनंतवीर्यरूप स्वचतुष्टय का प्रगट परिणमन होकर जगमगाता हुआ सुप्रभात प्रगट हो, वही उत्कृष्ट सुप्रभात है। वह मंगल प्रभात उदित हुआ सो हुआ... अब कभी वह अस्त नहीं होगा। बाहर का सूर्य तो अनंत बार उदित हुआ और अस्त हो गया, किंतु चैतन्य के अनुभव में से जो अनंत चतुष्टयरूपी सूर्य प्रगट हुआ, वह अनादि अनंत प्रकाशमान है, उसका कभी अस्त नहीं होता।—ऐसा सादि-अनंत आनन्दरूप सुप्रभात प्रगट हुआ, वह महामंगल है; उसमें संसाररूपी रात्रि के अंधकार का अभाव है। मिथ्यात्वरूपी रात्रि को नष्ट करके सम्यग्दर्शनरूपी सूर्य प्रगट हुआ, वह भी मंगल सुप्रभात है और संसाररूपी रात्रि के अंधकार का नाश करके केवलज्ञानरूपी जगमगाता चैतन्य प्रकाश प्रगट हुआ वह महा मंगलरूप है। ऐसे मंगल सुप्रभात की महिमा का कलश आज पढ़ा जा रहा है:—

चित्पिंडचंडिमविलासविकासहासः शुद्धप्रकाशभरनिर्भर सुप्रभातः।
आनन्दसुस्थितसदा स्खलितैकरूपः तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा॥२६८॥

आत्मा में सुप्रभात का उदय होता है।—किसप्रकार? कि प्रत्येक आत्मा में केवलज्ञानादि स्वभावचतुष्टय शक्तिरूप से तो त्रिकाल विद्यमान हैं; उसमें अंतर्मुख होने से पर्याय में केवलज्ञानादि स्वचतुष्टय का उदय होता है। जो पुरुष अनेकांत द्वारा जानकर अनंतधर्मस्वरूप इस चैतन्यपिण्ड का आश्रय करता है, उसे चैतन्य के विलास से शोभायमान ज्ञान और आनन्दादि चतुष्टय से जगमगाता हुआ सुप्रभात उदित होता है। विकार तो अंधकार है और चैतन्य तो प्रकाश है। इसप्रकार राग और ज्ञान के भेदज्ञान द्वारा आत्मस्वभाव की दृष्टि करने से अतीन्द्रिय आनन्दमय अमृत के स्वादसहित सम्यग्दर्शनरूपी सुप्रभात उदित होता है। जिसके ऐसा प्रभात उदित हुआ, उसके आत्मा में से अनादिकाल का अंधकार दूर हो गया और अपूर्व प्रकाश विकसित हुआ। वह आत्मा स्वयं तो

आनन्दरूप है और दूसरे (उसे पहिचाननेवाले) जीवों के लिये भी वह आनन्द का कारण है।

ऐसा सुप्रभात कैसे विकसित होता है? चिदानंदस्वभाव का आश्रय—इसप्रकार चैतन्यभूमिका के आश्रय से चैतन्य-कलिका विकसित हो जाती है। सम्यग्दर्शनरूपी प्रभात भी चिदानंदस्वभाव के आश्रय से होता है और केवलज्ञानरूपी प्रभात भी उसी के आश्रय से होता है। यह सम्यग्दर्शन और केवलज्ञान—दोनों आनन्दमय सुप्रभात हैं; दोनों का अतिशय शुद्ध प्रकाश है। अहो, जहाँ सम्यग्दर्शन और केवलज्ञानरूपी दीपक जले, वहाँ आत्मा में दीपावली (अर्थात् सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायरूप दीपकों की पंक्ति) प्रगट हुई और सादि-अनंत मंगलरूप अपूर्व नूतन वर्ष आरम्भ हुआ। जिसे चैतन्यस्वरूप आत्मा की अनुभूति प्रगट हुई, वह जीव मोक्ष के निकट आया और उसके सच्चा सुप्रभात उदित हुआ। वह आत्मा स्वयं ही मंगलरूप परिणमित हो गया और जगत् के जीवों के लिये भी वह मंगलरूप है।

और चैतन्यतत्त्व अनंत आनन्दरस से भरपूर है; उसके आश्रय से जो सुप्रभात उदित हुआ, वह आनन्द में सुस्थित है। भगवान आत्मा आनन्द के अनुभव में स्थिर हुआ है—आनन्द का स्वाद लेने में संलग्न होकर स्थित हुआ है। जो ऐसी दशा प्रगट हुई, वह सदैव अस्खलित है; उसमें कर्मादि की कोई बाधा नहीं है, उसमें पुनः स्खलना नहीं है, विघ्न नहीं है, भंग नहीं है। चैतन्य के आश्रय से प्रगट हुआ वह सुप्रभात सदा चैतन्य के साथ ही अस्खलितरूप से स्थित रहेगा। उसके प्रकाश को कोई रोक नहीं सकता; उसमें विकार का कोई कलंक या कर्म का कोई आवरण नहीं है; मात्र शुद्ध आनन्द से वह भरपूर है। जहाँ आत्मा में ऐसा अपूर्व नूतनवर्ष लगा—अपूर्व पर्यायरूपी मंगल-प्रभात उदित हुआ—वहाँ वह आनन्दानुभवरूपी मिष्टान्न के भोजन करता है। लो, यह नूतनवर्ष की मिठाई परोसी जा रही है। सुप्रभात अर्थात् सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान तक की पर्यायोंरूप जो सुप्रभात है, वह अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव से भरपूर है। सम्यग्दर्शन भी अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर है और केवलज्ञान भी। अहा, भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशों में आननदमय चैतन्यदीपकों से जगमगा उठा है—शोभायमान हो उठा है; वह मंगल प्रभात है; उसका प्रकाश अब किसी से चलित नहीं होता; इसलिये उसकी ज्योति अचल है। इसप्रकार चैतन्य में स्थिर होकर स्ववीर्य से केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय की रचना करके भगवान आत्मा सादि-अनंत सुप्रभातरूप से सुशोभित होता है; वह अपूर्व मांगलिक है।

इसप्रकार नूतनवर्ष का मंगलाचरण किया।

अनुभूति की रीति

—: समयसार गाथा १४४ के प्रवचन से :—

अनुभव चिन्तामणि रतन, अनुभव है रसकूप;
अनुभव मारग मोक्षनो, अनुभव मोक्षस्वरूप।

मंगल-आशयवाले जिज्ञासु शिष्य ने पूछा था कि—पक्षातिक्रान्त का क्या स्वरूप है ?—उसका यह उत्तर चल रहा है। जिसप्रकार केवली भगवान समस्त नयपक्षों से अतिक्रांत हैं, उसीप्रकार श्रुतज्ञानी भी स्वसंवेदन में समस्त नयपक्ष के ग्रहण रहित होने से पक्षातिक्रांत हैं। इसप्रकार जो पक्षातिक्रांत है, वही शुद्ध आत्मा है; वही समयसार है—ऐसा नियम बतलाते हैं; और वैसा पक्षातिक्रांतपना कैसे प्रगट होता है अर्थात् सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट होता है। वह बात आचार्यदेव १४४ वीं गाथा में अलौकिक रीति से समझाते हैं:—

सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदित्ति णवरि ववदेसं।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो॥१४४॥
सम्यग्दर्शन ज्ञानमेष लभत इति केवलं व्यपदेशम्
सर्वनयपक्ष रहितो भणितो यः स समयसारः॥१४४॥

शुद्धात्मा के विकल्प उठें, उन्हें कहीं सम्यग्दर्शन नहीं कहा जाता। सम्यग्दर्शननाम तो शुद्धात्मा को ही दिया जाता है। अंतर्मुख होकर जो आत्मा सम्यक्‌श्रद्धा-ज्ञानरूप से परिणमित हुआ, उसी को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। 'मैं शुद्ध हूँ'—ऐसा विकल्प उठा, वह सम्यग्दर्शन नहीं है, और वास्तव में वह सम्यग्दर्शन का साधन भी नहीं है। जिसका उपयोग नवतत्त्व के विकल्प जाल में अटका है, उसका उपयोग खंडित होता है, उसे 'सम्यग्दर्शन' नाम नहीं दिया जाता। विकल्पों से दूर होकर जो उपयोग अंतरस्वभावोन्मुख हुआ, वह स्वरूप-ध्यान द्वारा आत्मद्रव्य के साथ एकाकार—अभेद हुआ। ऐसी अभेद पर्यायरूप से परिणमित आत्मा ही सम्यग्दर्शन है। अहा, जब तक स्वसन्मुख निर्णय द्वारा अंतर में स्ववस्तु को प्राप्त करने की शक्ति प्रगट न करे, तब तक चैतन्यतत्त्व अनुभव में नहीं आता। 'यह चैतन्यवस्तु ही मैं हूँ और उसी में मुझे ढलना योग्य है।'—ऐसे निर्णय के बिना ज्ञान का परिणमन अंतरोन्मुख नहीं होता। विकल्प तो थक-थककर पराङ्मुख हो जाते हैं; उनमें ऐसी शक्ति नहीं है कि—चैतन्यस्वभाव तक पहुँच सकें।

विकल्प का अवलम्बन छोड़कर सीधा ज्ञानानंदस्वभाव का अवलम्बन करना ही स्वानुभव का तथा सम्यग्दर्शनादि का उपाय है।

अब, आचार्यदेव स्वानुभव की रीति समझाते हैं:—

''**प्रथम तो श्रुतज्ञान के अवलम्बन से ज्ञानस्वभावी आत्मा का निश्चय करके....**''—यह एक बात है। अनुभव के लिये प्रथम क्या करना चाहिये?—तो कहते हैं कि—प्रथम श्रुतज्ञान के अवलम्बन से ज्ञानस्वभावी आत्मा का निश्चय करना चाहिये। पहले राग का या व्यवहार का अवलम्बन किया जाये—ऐसा नहीं है। श्रुतज्ञान का ही अवलम्बन है और उसी के द्वारा अर्थात् भावश्रुत को अंतर्मुख करके ही आत्मस्वभाव का निर्णय होता है। कैसे आत्मा का?—कि ज्ञानस्वभावरूप, ज्ञानस्वरूप आत्मा का निर्णय श्रुतज्ञान को अंतर्मुख करने से होता है। अनुभव करनेवाला जीव प्रथम ऐसे आत्मा का निर्णय करता है। वह निर्णय स्व की ओर ढलता हुआ है; उस निर्णय में विकल्प का अवलम्बन नहीं है; स्वभाव की ओर ढलते हुए ज्ञान के बल से वह निर्णय होता है। अपने अनुभव के लिये मुझे ज्ञान का ही अवलम्बन है—विकल्प का अवलम्बन नहीं है—ऐसा दृढ़ निर्णय करने के पश्चात्, निर्णय के बल से मति-श्रुतज्ञान को स्वोन्मुख करने पर भगवान आत्मा की प्रगट प्रसिद्धि होती है। मति-श्रुतज्ञान को इन्द्रियों तथा मन का अवलम्बन नहीं है, इसलिये वे अतीन्द्रिय हैं।—ऐसे मतिश्रुत द्वारा आनन्दानुभव सहित आत्मा की प्रसिद्धि अर्थात् अनुभव होता है। यह अनुभव की रीति है। विकल्प के वेदन में आत्मतत्त्व की प्रसिद्धि नहीं होती, उसमें तो राग और आकुलता की ही प्रसिद्धि होती है। श्रुतज्ञान के विकल्प भी आकुलता उत्पन्न करनेवाले हैं; उस श्रुतज्ञान को मर्यादा में लाकर अर्थात् अंतर्मुख करके आत्मोन्मुख करने से तत्काल भगवान आत्मा निजानंदरस सहित प्रगट होता है। आत्मोन्मुख होना, वह श्रुतज्ञान की मर्यादा है, किंतु विकल्प में अटकना, वह श्रुतज्ञान की मर्यादा नहीं है। अरे, परसन्मुख श्रुत के विकल्पों से तो आकुलता उत्पन्न होती है, तो फिर वह शांत अनाकुल चैतन्यरस के वेदन का साधन कैसे होगा? अरे प्रभु! बाह्य पदार्थों को प्रसिद्ध करनेवाला परोन्मुख ज्ञान तो आस्रवभाव सहित है, तो फिर वह स्वानुभवरूप संवर का कारण कैसे होगा? ज्ञान को अंतर्मुख करते ही समस्त विकल्प छूट जाते हैं, विकल्प को साथ लेकर चैतन्य में प्रवेश नहीं हो पाता, किंतु उसे बाहर छोड़कर (विकल्प रहित होकर) ही चैतन्य में प्रवेश होता है।—यह एक ही परमार्थ उपाय है। विरुद्ध विकल्पों (कुदेवादि की मान्यता की बुद्धि) की तो बात ही क्या, सच्चे देव-गुरु तथा उनके कहे हुए

तत्त्वों के विकल्प भी स्वानुभव में प्रविष्ट होने का साधन नहीं हैं। अत्यंत विकल्प रहित होकर ज्ञान को स्वोन्मुख करे तो तत्काल ही निजरस से स्वानुभव के आनन्दसहित आत्मा प्रगट होता है। ऐसे स्वानुभव द्वारा ही आत्मा सम्यक्स्वरूप से दृष्टिगोचर होता है, इसलिये वही सम्यग्दर्शन है तथा वही सम्यग्ज्ञान है; उसी को 'समयसार' कहा जाता है।

चैतन्यपिण्ड जिसप्रकार देह से पृथक् है, उसीप्रकार विकल्पों से भी पृथक् ही है। विकल्प की मिलावट द्वारा देखा जाये तो चैतन्यपिण्ड का सम्यक्स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता। पृथक् चैतन्यपिण्ड को निर्णय में लेकर ज्यों ही मति-श्रुतज्ञान उसमें उन्मुख होकर एकाकार हुआ कि—चैतन्यपिण्ड समस्त विकल्पों से छूटकर मानो विश्व के ऊपर तैर रहा हो!—ऐसा अनुभव होता है। वह निजरस से-शांत चैतन्यरस से-भरपूर है; उसमें परम शांतिरूप निराकुलता है; अकेला चैतन्यघन आत्मा विश्व से पृथक् अनुभव में आता है। इसप्रकार जब यह आत्मा अखंड प्रतिभासमय, अनंत विज्ञानघन, परम आत्मस्वरूप को स्वसंवेदनपूर्वक अनुभव में लेता है, तब आत्मा सम्यक्रूप से दृष्टिगोचर होता है—ज्ञात होता है, इसलिये वही सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान है।—ऐसे अनुभव से पूर्व की जो श्रद्धा हो, उसे सम्यग्दर्शन नहीं कहते तथा जो ज्ञान हो, उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहते। स्वानुभव से पूर्व जो श्रद्धाज्ञान थे, वे यथार्थ नहीं थे, वे कहीं विकल्प में अटकते थे; उनमें आत्मा की प्रसिद्धि नहीं थी। और यह श्रद्धा-ज्ञान तो निर्विकल्प अनुभव से, ज्ञान के ही अनुभव द्वारा हुए हैं, इसलिये इनमें भगवान आत्मा की प्रसिद्धि हुई है।

आत्मा में अंतर्मुख होकर जो अनुभव हुआ, उसमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का समावेश हो जाता है; सम्पूर्ण मोक्षमार्ग अनुभव में आ जाता है। अनादि से जो निर्णय नहीं था, वह निर्णय करके जहाँ ज्ञान अंतर्मुख हुआ, वहाँ निर्विकल्प वेदन में ज्ञान और विकल्प बिल्कुल पृथक् हो गये। ज्ञान तो अंतर में एकाकार हुआ और विकल्प बाहर रह गया। अहो! सर्वज्ञता के धामरूप अपना आत्मा है—ऐसा उसका अत्यंत माहात्म्य, अत्यंत आदर तथा अत्यंत उत्साह लाकर उपयोग उस ओर उन्मुख हो, वहाँ निर्विकल्प सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान होता है। नयपक्ष का सूक्ष्म विकल्प भी आस्रव ही है; मैं तो ज्ञानस्वभाव हूँ और मुझे अपने ज्ञानस्वभाव का ही अवलम्बन करनेयोग्य है—ऐसा दृढ़ निर्णय किये बिना कभी निर्विकल्प भाव नहीं होता। जिसके निर्णय में ही भूल हो, जो विकल्प के अवलम्बन से लाभ मानता हो, उसे कभी निर्विकल्प भाव अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट होते ही नहीं। भगवान शुद्ध आत्मा विकल्प द्वारा प्रकाशित नहीं होता, किंतु

निर्विकल्प भाव द्वारा ही प्रकाशित होता है। बाहरी चिंता तो दूर रही, किंतु अंतर के विकल्प द्वारा चिंता करने से भी आत्मा अनुभव में नहीं आता। जिसने अपना उपयोग चैतन्य में लीन किया है, ऐसे निश्चल-निश्चिंत आत्मलीन पुरुषों द्वारा शुद्ध आत्मा अनुभव में आता है। अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करने के लिये यही एक साधन है। जिसकी परम अचिंत्य महिमा है, ऐसा समयसार (शुद्ध आत्मा) जो निर्मल परिणति द्वारा स्वयं आस्वाद में आया, विकल्प के अवलम्बन बिना स्वयं अपने से ही अनुभव में आया, वह ज्ञानरस से भरपूर भगवान है, वही सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान है। आचार्य भगवान कहते हैं कि—अहो, विशेष क्या कहें?—जो कुछ है, वह एक यही है; अनुभूति में सब कुछ समा जाता है।

चैतन्यरस का रसिक होकर हे जीव! अपने आत्मा को विज्ञानरस युक्त ही अनुभव में ले। अज्ञानभाव के कारण पराश्रय से लाभ मान-मानकर भिखारी हुआ था; उसने जहाँ स्वोन्मुख होकर स्वाश्रय किया, वहाँ वह 'भगवान' हुआ। सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा को 'भगवान' रूप में देखता है। जिसे सम्यग्दर्शन हुआ, वही परमात्मा का सच्चा भक्त हुआ, वही भगवान का सच्चा दास हुआ। जो अंतरोन्मुख होकर निर्विकल्प हुआ, उसे सम्यग्दर्शन कहो, उसे मोक्षमार्ग कहो, परमेश्वर कहो, तरणतारण कहो, उसे मुक्त कहो, भगवान कहो, परमशांति कहो, अतीन्द्रिय आनन्द कहो, भगवान का साक्षात्कार कहो, ईश्वर के दर्शन कहो, वीतराग विज्ञान कहो, विकल्पातीत कहो, देहातीत कहो, मनोतीत कहो, वचनातीत कहो, धर्मात्मा कहो, पूज्य कहो, परमेष्ठी पद कहो।—आत्मा की निर्विकल्पदशा में सब कुछ समा जाता है।

अहा, एकबार जहाँ ऐसा अनुभव हुआ, वहाँ ज्ञान स्वयं ज्ञान में ही आ मिलता है। जिसप्रकार पानी ढलवाँ मार्ग से स्वयं ही चला जाता है, उसीप्रकार विज्ञानघन का रसिक हुआ, वहाँ ज्ञान का झुकाव ज्ञान की ओर ही हुआ और विकल्प से पराङ्मुख हो गया। जिसप्रकार मुख्य जल प्रवाह से पृथक् होकर दूसरे मार्ग पर बहता हुआ जल वन में उधर-उधर भटकता है; किंतु यदि उस जल को जबरन ढालू मार्ग से प्रवाह की ओर मोड़ दिया जाये तो वह प्रवाह में एकाकार होकर पुन: अपने मार्ग पर बहने लगता है। उसीप्रकार भगवान आत्मा परम चैतन्यरस का विशाल प्रवाह है; किंतु वह अपने विज्ञानघन स्वभाव को भूलकर, स्वभाव से भ्रष्ट होकर, विकल्प के कर्तारूप से विकल्पों के गहन वन में भटक रहा था; किंतु अब भेदज्ञान द्वारा राग तथा ज्ञान को भिन्न-भिन्न जानकर उस भेदज्ञान के बल द्वारा आत्मा को विज्ञानघनस्वभाव की ओर मोड़ा और विकल्पों से

पराङ्मुख किया—ऐसे भेदज्ञानी जीव मात्र विज्ञानघन चैतन्यरस के ही रसिक हैं; वे आत्मा का विज्ञानरस युक्त ही अनुभव करते हैं। पहले पर्याय परोन्मुख होकर विकल्परूपी वन में भटक रही थी; उस पर्याय को जहाँ स्वोन्मुख किया, वहाँ चैतन्य के उत्कृष्ट रसपूर्वक ज्ञान स्वयं अपने में लीन हुआ। पर्याय का प्रवाह चैतन्यस्वभाव में मिलकर एकाकार हो गया।—ऐसे एकाकाररूप से चैतन्य के शांतरस का निर्विकल्प अनुभव हुआ, उसमें सब कुछ समा जाता है; सम्पूर्ण आत्मा और आत्मा के समस्त धर्म उसमें आ जाते हैं।

धर्मात्मा को चैतन्यरस की ही रसिकता है; जगत के अन्य किसी पदार्थ का रस-प्रीति उसे नहीं है। विकल्प का रस भी उसे नहीं है। निर्विकल्प उपयोग द्वारा परम वीतरागी विज्ञानरस का स्वाद लिया है और उसी का धर्मी को रस है—उसी की प्रीति है। इसलिये कहा है कि:—

अनुभव चिंतामणि रतन, अनुभव है रसकूप;
अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्ष स्वरूप।

उपयोग जहाँ अंतर्मुख होकर चैतन्य प्रवाह में मिला, वहाँ ज्ञान का प्रवाह ज्ञान की ओर ही ढल गया... फिर वह प्रवाह वेगपूर्वक आगे बढ़कर केवलज्ञान हो जाता है। उस प्रवाह में अनंत गुणों के निर्मल परिणमन का साथ है। ज्ञान ही अंतर्मुखरूप से ज्ञान में वृद्धि करता रहता है, बाह्य में कोई अवलम्बन नहीं है। स्वयं अपने अवलम्बन से ही अपने में लीन होता जाता है।—ऐसी अनुभवी धर्मात्मा की दशा है; वह विकल्प के अकर्तारूप से शोभायमान होता है और अबंध ही रहता है।

* * *

जो जानता है, वह जानता ही है,
जो करता है, वह करता ही है।

जो विकल्प का कर्ता होता है, वह मात्र विकल्प ही करता है; वह कर्ता होकर विकल्प को ही रचता है, किंतु मोक्षमार्ग को किंचित् नहीं रचता। अरे, विकल्प के कार्य से भिन्न ज्ञान को जानता भी नहीं है। और जो ज्ञानी भेदज्ञान द्वारा ज्ञान तथा राग को भिन्न-भिन्न जानता है, वह मात्र जानता ही है, वह विकल्प किंचित् नहीं करता। सम्यग्दृष्टि को जितने अंश में सम्यग्दर्शनादि हैं, उतने अंश में अबंधपना है; और जितने अंश में रागादि हैं, उतने अंश में बंधन है—ऐसा कहा है; किंतु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि सम्यग्दृष्टि को उन रागादि का कर्तृत्व है। धर्मी तो ज्ञाता ही रहता है; वह

ज्ञानभाव का ही कर्ता होकर परिणमित होता हुआ विकल्प के अंशमात्र को ज्ञान के साथ एकमेक नहीं करता; ज्ञानी तो ज्ञानरूप ही रहता है, विकल्प का कर्ता नहीं होता। विकल्प हो, वह ज्ञान से बाहर का बाहर रहता है।—'ज्ञानी को राग है'—ऐसा कहना उपचार है; ज्ञानी को तो ज्ञान ही है और राग उनके ज्ञेयरूप से है, ज्ञान के कार्यरूप से नहीं है।

अहो, ज्ञान में विकल्प की क्रिया किंचित्मात्र भासित नहीं होती, तथा विकल्प में ज्ञानरूप क्रिया भासित नहीं होती। ज्ञान और विकल्प की जाति ही अलग-अलग है; ज्ञान में विकल्प नहीं है और विकल्प में ज्ञान नहीं है। ज्ञान की अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर अनुभूति हुई, वहाँ विकल्प का कर्तृत्व स्वप्न में भी नहीं रहा। शांतरस के स्वाद के निकट ज्ञानी विकल्प की आकुलता के स्वाद को अपना कैसे जानेगा? तथा जो विकल्प के स्वाद में अटका है, वह चैतन्य के शांतरस का अनुभव कहाँ से करेगा?

इसप्रकार ज्ञानी और अज्ञानी की परिणति की दिशा ही भिन्न-भिन्न है। ज्ञानी तो ज्ञाता ही है, विकल्प का कर्ता नहीं है; और अज्ञानी विकल्प को ही करता है किंतु ज्ञान के निर्विकल्प स्वाद का अनुभव नहीं करता।

ज्ञानी और अज्ञानी के भिन्न-भिन्न कार्य की पहिचान द्वारा अचार्यदेव ने स्वभाव और विभाव का भेदज्ञान कराया है। ज्ञानी का कार्य ज्ञानमय ही है, उसमें विकार की क्रिया नहीं है; अज्ञानी का कार्य रागमय है, उसमें निर्मल ज्ञान की क्रिया प्रतिभासित नहीं होती। यहाँ जड़ की क्रिया की बात नहीं है, यहाँ तो आंतरिक परिणामों की बात है। ज्ञानी को कैसे पहिचाना जाये? तो कहते हैं कि ज्ञानक्रिया द्वारा ज्ञानी को पहिचानना चाहिये और राग के कर्तारूप से अज्ञानी को; अर्थात् जिसके अभिप्राय में राग का कर्तृत्व है, वह अज्ञानी है—ऐसा समझना।

देखो, प्रथम क्या करना चाहिये, वह बात भी इसमें आ जाती है। 'मैं ज्ञानस्वभाव ही हूँ'—ऐसा निर्णय पहले होना चाहिये और वह निर्णय ज्ञान द्वारा ही होता है; विकल्प द्वारा वह निर्णय नहीं होता। जो विकल्प को—शुभराग को या व्यवहार को साधन मानता है; उनके अवलम्बन से मेरा हित होगा—ऐसी जिसकी मान्यता है, उसके तो निर्णय में ही भूल है, उसकी तो शुरुआत ही गलत है। मैं तो ज्ञान ही हूँ, रागादि भाव मेरे ज्ञान से बाह्य हैं—ऐसे दृढ़ निश्चय बिना सच्चा प्रयत्न प्रारम्भ नहीं होता। अहो, कर्ताकर्म अधिकार द्वारा आचार्यदेव ने ऐसी स्पष्ट वस्तुस्थिति समझायी है कि यदि आत्मार्थी होकर समझे तो अपूर्व भेदज्ञान हुए बिना न रहे।

ज्ञान क्रिया और राग के कर्तृत्वरूप करोति क्रिया—यह दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। किसप्रकार भिन्न हैं?—कि जिसप्रकार स्वद्रव्य और परद्रव्य अत्यंत भिन्न हैं, उसीप्रकार ज्ञानक्रिया और रागक्रिया अत्यंत भिन्न हैं। स्वद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होनेवाली ज्ञानक्रिया तथा परद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होनेवाली करोति क्रिया—इन दोनों में किंचित् एकता नहीं है, अत्यंत भिन्नता है। राग से लाभ भी माने और ज्ञातारूप भी रहे—ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि जो राग का कर्ता होता है, उसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप ज्ञप्तिक्रिया नहीं होती; और जो ज्ञाता होता है, वह विकार के कर्तारूप से परिणमित नहीं होता। अरे, ऐसा स्पष्ट भेदज्ञान... तथापि अज्ञानी जीव विकार के साथ कर्ताकर्म की क्रियारूप से क्यों परिणमित होते हैं?—उनके अंतर में मोह क्यों अत्यंत तीव्रता से नाच रहा है? यदि यथार्थ भेद समझे तो वह कर्ताकर्मपना न रहे। जहाँ भेदज्ञान हुआ, वहाँ चैतन्यशक्ति से भरपूर अत्यंत गंभीर ज्ञानज्योति उग्ररूप से जगमगा उठी... उसमें विकार के कर्तृत्वरूप अंधकार कहीं नहीं रहा... और कर्म के साथ निमित्त-नैमित्तिकपना भी छूट गया। ज्ञान, ज्ञानरूप से ही परिणमित होने लगा... और आत्मा के चिदानंदस्वरूप में ही मुक्तरूप से विलास करने लगा।

टेप रील रेकोर्डिंग द्वारा प्रवचन प्रचार

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु महा मंडल सोनगढ़ के प्रचार विभाग द्वारा श्री नवनीतभाई की योजनानुसार प्रचारक श्री मधुकरजी को आमंत्रण देने पर भेजा जाता है। प्रतापगढ़ में दसलक्षण पर १३ रोज ठहरे थे। बाद नारायणगढ़, कुशलगढ़, लश्कर, ग्वालियर, भिण्ड, अशोकनगर आदि शहरों में मधुकरजी गये हैं। सब शहरों के मुमुक्षु भाईयों द्वारा समाचार है कि पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन टेप रील के द्वारा सुनकर सकल जैन समाज को महान धर्म लाभ हुआ है और धर्म जिज्ञासु भाईयों की संख्या बढ़ रही है।

नई धर्मशाला के लिये आया हुआ चंदा

५०००) श्री कमलाबहिन, पूरणचंदजी गोदिका जयपुर

१००१) सेठ श्री मीठालालजी सेठी

१००१) सेठ श्री खीमचंद जेठालाल, सोनगढ़

✻ एतदर्थ अनेकानेक धन्यवाद ✻

नया प्रकाशन

(१) कविवर पंडित श्री टेकचंदजी विरचित पंचमेरु-नंदीश्वर पूजन विधान तथा वर्धमान निर्वाण पूजा २४ जिन निर्वाण तथा त्रैलोक्य, कुंडलवर आदि जिनालय पूजा संग्रह, हिन्दी भाषा में पृष्ठ संख्या १८०, मूल्य १-०, पोस्टेजादि अलग।

(२) कविवर पंडित श्री टेकचंदजी विरचित दशलक्षण व्रत विधानादि पूजा। पृष्ठ ९०, मूल्य ०.७५।

(३) छहढाला मूल मात्र। मूल्य ०-१५, पोस्टेजादि अलग।

(४) जैन बाल पोथी। मूल्य ०-२५, पोस्टेजादि अलग।

सवैया

ज्यों मतिहीन विवेक बिना नर,
साजि मतंगज ईंधन ढोवे।
कंचन भाजन धूलि भरै शठ,
मूढ़ सुधारससों पग धोवै॥
वा हित काग उड़ावन कारण,
डारि महामणि मूरख रोवै।
त्यों यह दुर्लभ देह 'बनारसि'
पाय अजान अकारथ खोवै॥३॥

अर्थ—जो अज्ञानी अत्यंत दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर धर्म साधन के बिना व्यर्थ ही खो देताा है, वह मतिहीन शठ बिना विवेक के मानों हाथी से सजाकर उससे ईंधन ढोता है, या सोने के थाल में धूलि भरता है, या महा कुष्ट रोगी को किसी ने अमृत रसायन पीने के लिये दिया, वह अमृत से पाँव धोता है, या कौवे को उड़ाने के लिये चिंतामणि रत्न फेंककर न मिलने से रोता है॥३॥

(नया प्रकाशन)

अपूर्व अवसर

श्री राजचन्द्रजी कृत एक महान अमर काव्य। इस पर पूज्य कानजी स्वामी के प्रवचन गुजराती भाषा में तीन बार छप चुके हैं। धर्म जिज्ञासुओं की उस रचना को पढ़ने की भारी माँग होने से उसका हिन्दी अनुवाद भी छपकर तैयार हो गया है। साथ में भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत द्वादशानुप्रेक्षा तथा लघु सामायिक पाठ भी है। पृष्ठ संख्या १५० सजिल्द, मूल्य लागत से भी कम, ८५ नये पैसे मात्र। पोस्टेज अलग।

जिसको शास्त्र ज्ञान में ज्यादा अच्छा अभ्यास नहीं है उसको भी सरलता से अच्छा ज्ञान मिलेगा। २१००, बुक छपी थी। ११००, के प्रथम से ही ग्राहक थे। इच्छुक हों, वे शीघ्र मंगवा लेवें।

समयसारजी शास्त्र

परमागम श्री समयसारजी शास्त्र जो अत्यंत अप्रतिबुद्ध, अज्ञानियों के लिये भी समझनेवाला शास्त्र है जिसमें चारों अनुयोगों की बात आ जाती है। यह ग्रंथ दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल ठि० १७३-७५, मुंबादेवी रोड, बम्बई के द्वारा १५०० छपवाया गया था, उसमें से १४०० पुस्तक एक ही मास में बिक गयी हैं। अब १०० प्रति श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर सोनगढ़ ने मँगा ली हैं। अब दो पुस्तक से ज्यादा पुस्तक नहीं भेज सकेंगे। बम्बई मुमुक्षु मंडल दूसरी बार छपवाने की तैयारी कर रहा है, समयसारजी शास्त्र का प्रचार कितना बढ़ रहा है और इस युग में धर्म जिज्ञासु वर्ग उसका स्वाध्याय करने की कितनी रुचि रखते हैं, यह देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

—सम्पादक

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

पंचास्तिकाय	४ ॥)
नियमसार	५ ॥)
समयसार पृष्ठ ६१६ बड़ा साइज	५)
मूल में भूल (नई आवृत्ति)	।।।)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)
श्री अनुभवप्रकाश	॥)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)
समयसार प्रवचन भाग १	४ ॥।)
समयसार प्रवचन भाग २	५ ॥)
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)
प्रवचनसार	५)
अष्टपाहुड़	३)
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)
द्वितीय भाग	२)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥-)
द्वितीय भाग ॥-) तृतीय भाग	॥-)
जैन बालपोथी	।)
छहढाला मूल मात्र	१५ न. पै.
दसलक्षण व्रत विधान पूजा	०.७५
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२ ॥)
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द	५)
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१.८५)
छहढाला (नई टीका)	॥ ।-)
जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह सजिल्द	१ ।=)
अपूर्व अवसर प्रवचन और श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा	८५ न.पै.
भेदविज्ञानसार	२)
अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
स्तोत्रत्रयी	॥)
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
'आत्मधर्म मासिक' लवाजम-	३)
आत्मधर्म फाइलें १-३-५-६-७-८-१०-११-१२-१३ वर्ष	३ ।।।)
शासन प्रभाव	=)

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।